रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

सतगुरु वचनामृत
(लघु उपदेश)

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

S-E. 297, शास्त्री नगर,

ग़ज़ियाबाद (उ.प्र.) 201002

सतगुरु वचनामृत

बग़ैर गुरु की मदद से रूहानियत का प्राप्त होना आसान काम नहीं

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज)

बग़ैर एक गुरु की मदद से रूहानियत (आध्यात्म विद्या) का प्राप्त होना आसान काम नहीं है। माँ अगर न हो तो बच्चे का इश्क़ पुख़्ता (पक्का) कैसे हो ? उस्ताद अगर न हो तो शागिर्द (विद्यार्थी) में पुख़्तगी (परिपक्वता) कैसे आवे ? इस तरह अगर रूहानियत (आध्यात्म) का गुरु न हो तो इल्म रूहानियत (आध्यात्म विद्या) कैसे नसीब हो। यहाँ तो क़दम-क़दम पर सहारा लेने की ज़रूरत पड़ती है। मगर खैर कौन ज़्यादा समझाये ?

सुनो, फिर वही बात दोहराई जाती है। तालिब (जिज्ञासु) में रूहानियत (आध्यात्म) की तलब पैदा हुई। वह गुरु की ख़िदमत में गया, और बच्चों की तरह उनके कलाम (वचनों) से रूहानी ग़िज़ा (आत्मिक आहार) पाने लगा और पलने लगा। मुहब्बत से गुरु का प्रेम पैदा हुआ। प्रेम से उसके असली रूप की पहचान आयी और इस पहचान से गुरु की जात (व्यक्तित्व) के साथ यकसू (एकता) होने का मौक़ा हाथ आया, कबीर साहब फ़रमाते हैं -

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहीं ।
प्रेम गली अति साँकरी, यामे दो न समाहिं ॥

अब गुरु और चेला दोनों मिलकर एक हो गये। एक के दिल का असर दूसरे के दिल पर पड़ने लगा। संतमत के सिलसिले की तालीम को समझने, उस पर चलने वाले के लिए इसके बाद वही उदासीनता या इस्तग़ना, वही बका और सत्यलोक के दर्जे नसीब हो जाते हैं।

अंतर में दर्शन की चाह मालिक की मौज़ पर छोड़ें

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

कोई-कोई अभ्यासी यह चाहते हैं कि पहले हमको अंतर में दर्शन मिले तब हम ध्यान करें । उनकी यह चाह अनुचित तो नहीं है परन्तु इससे यह मालूम होता है कि उनमें जैसा चाव होना चाहिए वैसा नहीं है और विरह की कमी है । प्रभु की ऐसी मौज़ मालूम नहीं होती कि हर किसी को उसकी इच्छानुसार जब चाहे तब उसको गुरु रूप के दर्शन हों । इसलिए सभी अभ्यासियों के लिए यह उचित है कि पहले चाव को बढ़ायें और उसी चाव के अनुसार स्वरूप का अनुमान करके अभ्यास करें । दर्शनों की प्राप्ति मालिक की मौज़ पर छोड़ दें । संत सद्गुरु अत्यन्त दयालु होते हैं । जब जब और जैसे जैसे , जिस जिस के लिए मुनासिब होगा समय समय पर, किसी को जल्दी जल्दी और किसी किसी को कभी कभी स्वरुप के दर्शन देते रहेंगे।

इसमें कोई संशय नहीं कि प्रतिदिन और हर समय जब मन चाहे तब दर्शन मिलने से अभ्यास में आसानी तो होती है और प्रेम भी जल्दीजल्दी बढ़ता है-, परन्तु यह स्थिति थोड़े ही दिन रह सकती है । उसके बाद गुप्त होने लगती है । इसका कारण यह है कि रास्ता बहुत लम्बा है जिसे काटने के लिए विरह, बेकली और शौक की बड़ी आवश्यकता होती है । यदि दर्शन हर वक्त मिलते रहें तो विरह, बेकली और घबराहट पैदा नहीं होवे ।

हमारा मार्ग क्या है - हम यहाँ क्यों आये हैं ?

(ब्रह्मलीन आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

जिस मार्ग पर तुमको चलना है, वह निष्कामता का मार्ग है। यदि तुम अपने मन में किसी लालसा को लिए हुए यहाँ आये हो या किसी प्रकार की अन्य इच्छा (इस लोक की अथवा परलोक की) तुम्हारे हृदय में उठ रही है तो तुमको समझना चाहिए कि हम अपने मार्ग से च्युत हो रहे हैं। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए साधन ओर सत्संग करता है, वह वास्तव में जिज्ञासु नहीं है। वह ईश्वर को नहीं चाहता और न उसके लिए यहाँ आता है।

हमारा जो मार्ग है, उसमें किसी मनुष्य को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसमें ऐसी सिद्धियाँ और शक्तियाँ आ जायेंगी कि जिनके द्वारा वह भूत भविष्य का ज्ञात हो जायेगा अथवा कोई अद्भुत चमत्कार दिखाने लग जायेगा कि जिसके कारण वह समाज में प्रतिष्ठित समझा जाने लगे और सर्व-साधारण उसकी महिमा गाने लगे।

हम किसी से यह वायदा नहीं करते कि उसके पाप क्षमा करा दिए जायेंगे तथा अशुभ कर्मों के करने पर भी यम-दण्ड से बचा लिया जायेगा। तुम लोगों को ये आशा छोड़ देनी चाहिए।

हम यह भी वायदा नहीं करते कि आज से तुम्हारे सारे कार्य ठीक होंगे और तुम क्लेशों से बचा दिए जाओगे। ये तो सब भोग हैं। चाहे भजन करो या न करो, तुम्हें भोगने ही पड़ेंगे। गंडा, तावीज़, झाड़फूंक, दुआ, इत्यादि के द्वारा साँसारिक लाभ हमारे यहाँ नहीं पहुँचाये जाते। कोई व्यक्ति अपना मुक़दमा जीतने की गरज़ से, परीक्षा में पास होने के लिए, रोज़गार और

नौकरी के लिए, रोगों से निरोग होने के लिए, सन्तान की प्राप्ति के लिए अथवा किसी दूसरे कष्ट को दूर करने के लिए यहाँ आया है तो वह अधिकारी नहीं है। ईश्वर प्राप्ति के लिए ये सारे विचार त्याग देने चाहिए और कभी आशा नहीं रखनी चाहिए कि हम उनकी आगे पीछे की बात बता देंगे। यदि तुम्हें इन बातों की चाहना है तो इसके लिए संसार में कमी नहीं है। ऐसे लोगों के पास तुम जा सकते हो।

.

कर्म और दया

दो रास्ते हैं

1- कर्म का

2- -दया का

कर्म का रास्ता ऋषियों का है और दया का रास्ता भक्तों का है । कर्म के रास्ते के लिए तमाम कायदे और कानून है। दया के रास्ते के लिए न कोई कायदा है न कोई कानून । उसकी दया ही दया है। या तो सब कुछ उसी पर छोड़ दीजिए, वह जो चाहे सो करे वह मालिक है । तमाम उम्र में इंसान से वह नहीं हो सकता जो उसकी दया से एक पल में हो जाता है । पलक मारते ही तमाम जन्मों के कर्म कट जाते हैं और अगर फिर उसका प्रेम मौजूद है तो चाहे हजारों जन्म हों और महा तकलीफ में कटे, क्या परवाह है सिर्फ प्रेम का - सहारा चाहिए ।

परम् सन्त श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

ईश्वर से, गुरु से क्या माँगे ?

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

तो सिर की बाज़ी लगानी पड़ती है इस रास्ते में। कुछ माँगना नहीं है। क्या बच्चा माँ से कुछ माँगता है ? यह प्रभु का, गुरु का, विरद है कि वे अपने सच्चे सेवक की देख-भाल करें, उसकी सब तरह से रक्षा करें। सेवक तो सब कुछ अर्पण करके निर्भय हो जाता है, निश्चिन्त हो जाता है, कोई चिन्ता नहीं रहती। हम माँगे माँगते हैं कि हमारा यह काम हो जाय, वह हो जाय। ठीक है, माँगना चाहिए, बाप है गुरु, उससे माँगना बुरी बात नहीं है, परन्तु कभी-कभी। गुरु महाराज कहा करते थे, माँगने की चीज़ है, ईश्वर का प्रेम, माँगो। हमने नहीं माँगा, आप नहीं माँगते, तो क्या आपका दोष नहीं है ? हमने तो अपना समय व्यर्थ गँवाया है। हम भी पूर्ण शिष्य न बन सके। कुछ लोग पुराने बैठे हैं, गुरु महाराज ने शरीर छोड़ने के करीब दो साल पहले कहा था कि जैसा मैं बनाना चाहता था, एक भी व्यक्ति वैसा नहीं बन सका। यह उनके अन्तिम समय का खेद था। हमारा दोष है, हमारी कमी है। हम माया में, वासनाओं में फँसे हुए हैं, सम्मान के भूखे थे, जो भी साँसारिक बातें होती हैं, उनमें फँसे हुए थे।

दिल का अभ्यास सबसे उंचा है, इसका असर शारीर पर पड़ता है। दिल को काबू में रखना और उसे तरतीब देते रहना ही असली अभ्यास है।

(समर्थ सद्गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

अपनी सुरत को पाक साफ़ करने तथा मन का घाट बदलने के लिए क्या करें ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लालजी महाराज)

इसका तरीक़ा है - गुरु का सत्संग करना और गुरु की दया प्राप्त करना। वैराग्य सत्संग से पैदा होता है और आत्मा को शक्ति मिलती है। अभ्यास से मन का घाट बदलता है. वह तम से रज और रज से सत पर आ जाता है। सत्संग से मन का मैल बराबर धुलता रहता है। गुरु दर्शन से, उनके चरणों में बैठने से, उनके वचन सुनने और उन पर अमल करने से, मन का घाट बदलने लगता है। उनसे प्रीति करने से आहिस्ता-आहिस्ता वह ईश्वर की प्रीति में तब्दील हो जाती है। इसके लिए प्रीति की ज़रूरत है और साथ ही साथ प्रतीति की भी। प्रतीति यह है कि केवल गुरु ही हमारे सच्चे हितेषी और शुभ चिन्तक हैं। वह जो फ़रमाते हैं वह सब हमारे कल्याण के लिए ही है। उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। और यह कि वे अनुभवी पुरुष हैं, आत्मा का साक्षात्कार करा सकते हैं. प्रीति यह है कि उनकी हर एक बात को अपने हित की जानकर उस पर अमल करने की कोशिश करें. कोई भी ऐसा काम न करें जिससे वो नाख़ुश हों। अपना सब कुछ उन पर न्यौछावर कर दें। हर वक्त उनके स्वरुप यानी उनकी शक्ल का या उनकी बताई हुई विधि का ध्यान करें। तभी मन का घाट बदला जा सकता है। सत्संग में आकर बैठ जाना, वचन सुन लेना और उन पर अमल न करना - समय को नष्ट करना है।

सद्गुरु अपनी दया, पहली कृपा दृष्टि में जीव के अन्दर प्रवेश करा देते हैं, और वह दया बराबर आती रहती है। उसकी पहचान यह है कि मन अगर संसार की किसी चीज़ में फंस भी जाता है तो वहाँ उलझता नहीं है। उसे वहाँ सुख और शांति नहीं मिलती और जी में एक उथल-पुथल सी मची रहती है, और उस चीज़ में फंसने से बचा लेती है, और अपने असली आदर्श यानी परमात्मा, जो कि हमेशा के सुख और शान्ति का भण्डार है, उसकी तरफ़ मोड़ती है।

गुरु न भी हो तब भी ईश्वर की कृपा सब पर हर समय एक जैसी बरसती रहती है। अन्तर करते इतना निर्मल ओर संवेदनशील बन जाता -साधना करते केवल यह है कि गुरु का शरीर है कि गुरु के शरीर के द्वारा परमात्माकी कृपा की रश्मियाँ जो आप तक पहुँचती हैं वे कुछ अधिक शक्ति, अधिक तेज और वेग लिए होती हैं। उदाहरण के लिए आतशी शीशे पर यदि ड़ा जल उठता हैसूर्य की किरणें पड़ें तो उसके नीचे रखा काला कप।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

उपासना के समय शुरूशुरू में प्रभु की महिमा का गुणगान-, स्तुतिवन्दना आदि करना-, भजन व पुस्तकें पढ़ना भी सहायक होते हैं । की भक्ति किसी भी तरह , किसी भी भाव की हो, चाहे प्रेमा भक्ति हो, जैसी चैतन्य महाप्रभु करते थे । भाव में नृत्य गान -वे तो भक्ति मन और समस्त चेतना भगवान क-करते इतने विभोर हो जाते थे कि उनका तन-करते तदरूप हो जाती थी, ईश्वरमयी बन जाती थीभक्ति की चरम सीमा या अन्तिम स्थिति ., परिणति आत्मा के 'मौन' की दशा ही है ।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

कर्म करने की कला

(ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

जितनी भी हम साधना करते हैं, चाहे ब्रह्म-चक्र पर करें, आज्ञा -चक्र पर करें, हृदय-चक्र पर या नाभि-चक्र पर करें, यह एक तकनीक (अभ्यास) है मन को शान्त करने की। इनसे आप मन को एकाग्र कर लेंगे, मन के भीतर शांति भी हो जाएगी। परन्तु यह जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। हम लोग साधना पर ज़ोर देते हैं, आँखें बन्द करके साधना पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। साधना ज़रूर करनी चाहिये। इसका अपना परिणाम है। परन्तु जब तक हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं होता, ईश्वरमयी नहीं होता, तब तक समझ लीजिये कि यह एक तकनीक (साधन, अभ्यास) है, जैसे एक शिकारी की तकनीक होती है। जब वह शिकार करता है तब उसकी एकाग्रता इतनी प्रबल होती है कि यदि आप घन्टों कोशिश कर लें फिर भी ऐसी एकाग्रता नहीं होती। शिकारी को उसकी एकाग्रता का यदि कोई फल है तो यही कि वह मछली पकड़ लेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं। उसके अंतर में जो हिंसा की मलीनता है वह और भी मज़बूत होगी। तो हमें भी देखना है कि अभ्यास करते एकाग्रता होने लगी, मन ठहरने लगा, परन्तु उसके (परमात्मा के, गुरु के) नाम और स्वरुप का ध्यान करने से हमारा चित्त भी शुद्ध हुआ है या नहीं। क्या हम कबीर साहब की तरह अन्तिम समय में भगवान से निवेदन कर सकते हैं कि हे प्रभु। जैसी श्वेत चादर आपने हमें प्रदान की थी वह जैसी की तैसी श्वेत चादर हम आपके चरणों में अर्पण करते हैं। श्वेत चादर का मतलब है कि हमारा चित्त पूर्ण निर्मल हो जैसा कि एक शिशु का निर्मल होता है। क्या मरने के वक्त हमारा चित्त निर्मल है ? क्या विचार शून्य है ? तो हमारी साधना का परिणाम यह होना चाहिये कि हमारा चित्त पूर्ण निर्मल हो जाये। मीरा कहती हैं कि हे प्रभु। कृपा करो, मेरी चुनरी अपने प्रेम के रंग में ऐसा रंग दो कि उसका एक भी कोना ख़ाली न रहे, उसमें कोई दाग न रहे। हमें भी प्रतिक्षण चित्त निर्मल करने का ऐसा अभ्यास करना है कि जिससे हमारे चित्त पर एक भी दाग न रहे। कर्म तो हमें करना ही है परन्तु कर्म करने की कला यह होनी चाहिये कि उसके साथ हमारा बन्धन न हो।

तक़दीर और तदबीर दो चीज़ें हैं । तक़दीर वह है जो हमारे पिछले कर्म हैं जिनके मुताबिक़ तुम्हें यह ज़िन्दगी मिली है । तक़दीर ही ऐसे वातावरण में और ऐसे माँबाप के यहाँ हमें - पैदा करती है, जहाँ पिछले जन्मों का क्रम चलता रहे । एक ही घर में कई बच्चे पैदा होते हैं । वे जैसे होते जाते हैं न्यारे-जैसे बड़े होते जाते हैं उनके स्वभाव और कर्म न्यारे- । यह तक़दीर का विस्तार)manifestation) है । जैसेजैसे उनके मन का विकास होता जाता - है, दुनियाँ का प्रभाव उस पर पड़ने लगता है और आत्मा की रौशनी पाकर पिछले कर्म जाग्रत अवस्था में आ जाते हैं । इस तरह फिर वही कर्म करने में लग जाता है जो पिछले जन्मों में करता रहा है और जो उसकी आदत है । किसी दरख़्त के बीज को अगर पानी, हवा, धूप वग़ैरा न मिले तो वह उग नहीं सकता और न परवरिश पा सकता है, और न उसमें फल आ सकते हैं । बीज तक़दीर है, उसे जब वातावरण ठीक मिलता है तब वह उगने लगता है, धूप, पानी वग़ैरा दुनियाँ के प्रभाव पाकर वह उगने लगता है और फिर उसमें फल आता है । यही कर्म फल है । बच्चा पैदा होता है, दुनियाँ का वातावरण पाकर उसके पिछले कर्म उदय होते हैं, और उनमें वह व्यवहार करता है । फिर उन कर्मों का फल मिलता है । यह सब तक़दीर का दायरा है (घेरा) । तदबीर के ज़रिये इन्सान अपनी तक़दीर को बदल सकता है (द्वारा) । जिन बातों को वह अपनी पिछली ज़िन्दगी में पूरी तरह हासिल न कर सका, वे इस ज़िन्दगी में ज़रा सी कोशिश करने से हासिल हो सकती हैं ।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ(श्रीकृष्ण लाल जी महाराज .

हमारे यहाँ दोस्तों और दुनियां वालों की झिडकियां, ताने, लानतें- मलामतें, रियाज़्तें (अभ्यास) और उपवास ईश्वर प्राप्ति में सहायक हैं।

(समर्थ सद्गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

अपने जीवन काल में ही अपनी सुरत को सारी इच्छाओं से पाक साफ़ करें, निर्मल करें।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ .श्रीकृष्ण लालजी महाराज)

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज कहा करते थे कि एक बार उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि दुनियाँदार की मौत किस तरह होती है और संतों की किस तरह। उन्होंने स्वप्न देखा कि उनके गुरुदेव आये हैं। लकड़ी के दो तख़्त जिन पर दो सफ़ेद चादरें बिछी हुई हैं, दिखाकर कहने लगे कि देखो, एक तख़्त पर जो चादर बिछी हुई है उसमें सैकड़ों-हज़ारों छोटी-छोटी कीलें ठुकी हुई हैं और उनके ज़रिये वो तख़्त में जड़ी हैं। उसे खींच कर उठाया तो उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। जहाँ-जहाँ वे कीलें जड़ी थीं वहीं-वहीं वे अटकीं और चीथड़े होकर वहाँ से उखड़ी। यह दुनियाँदार की मौत है। सुरत सफ़ेद चादर है और कीलें उस दुनियाँदार की अगणित इच्छायें हैं जिनमें वह फँसी रहती है। मरते वक्त आसानी से उन इच्छाओं से इसी तरह नहीं निकलने पाती जिस तरह यह चादर इन कीलों से नहीं निकली। फिर उन्होंने दूसरे तख़्त की तरफ़ इशारा किया। तख़्त में कीलों के ऊपर चादर थी। उस चादर की सब कीलें निकल चुकी थीं। उसे खींचा तो एकदम आसानी से बिना किसी रुकाबट के चादर साफ़ खींची चली आयी। उन्होंने फ़रमाया कि देखो संत अपनी ज़िन्दगी में ही समस्त इच्छाओं से इस तरह अपने आपको अलहदा (पृथक) कर लेता है जैसे यह चादर कीलों के ऊपर आ गयी। इसलिए मरते वक़्त उसे कोई तकलीफ़ नहीं हुई।

कहने का आशय यह है कि हमें अपनी सुरत को सारी इच्छाओं से पाक-साफ़ करना होगा। इसे निर्मल बनाना होगा। परमात्मा से मिलने के अतिरिक्त कोई ख़्वाहिश दिल में न रहे। यही मन को शांत करना है। लेकिन यह एकदम और ऐसी आसानी से नहीं हो जाता।

गुरु का सत्संग करें

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज)

जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करें। प्रत्येक व्यक्ति उनके सानिध्य का प्रयास करता रहे। सत्संग दो प्रकार का होता है - एक शारीरिक सत्संग - जब हम गुरुदेव के चरणों में जाकर बैठते हैं। दूसरे, जब हम उनकी सेवा में बैठें तो विचार करें कि उनके मस्तक से या हृदय से आत्मा का प्रकाश निकलकर हमारे सारे शरीर में प्रवेश कर रहा है। सत्संग में आकर, गुरु के पास बैठकर। कोई अभ्यास नहीं करना चाहिए, केवल आत्मिक प्रसाद लेना चाहिये। परमात्मा सूर्यों का भी सूर्य है। सूरज का प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। इसी तरह परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, उनकी कृपा सब पर बरस रही है। 'झिम-झिम बरसे अमृत धारा' अर्थात उसकी कृपा की फुहार हम पर प्रतिक्षण बरस रही है।

उस कृपा-प्रसादी को ग्रहण करने का तरीक़ा पूज्य गुरु महाराज (महात्मा डॉ . श्रीकृष्ण लाल जी) ने बताया है कि शरीर को ढ़ीला छोड़कर बैठें, न शरीर में कोई तनाव हो, न मन में तनाव हो। तनाव या ज़बरदस्ती करने से जो कृपा ऊपर से बरसती है, उससे हम वंचित हो जाते हैं। गुरु महाराज कहा करते थे कि जैसे कपड़ा खूँटी पर टंगा होता है, वैसे हमारी दशा होनी चाहिये। अर्थात हमें अपना बल नहीं लगाना चाहिये। व्यक्ति गहरे पानी में डुबकी लगाता है तो अपने आपको छोड़ देता है। जितनी देर तक छोड़े रहता है अपने आपको, उसको कुछ नहीं करना होता, और जैसे ही वह अपने बल को धारा में अज़माने लगता है, उसी वक्त वह डगमगाने लगता है और वह बाहर आना चाहता है। यही स्थिति हमारी है। हम ईश्वर के चरणों में अपने आपको बिलकुल उस पर छोड़कर दर-असल बैठते नहीं हैं।

जतन और जुस्तजू चाहिये (पुरुषार्थ)। हर काम का फल ज़रूर मिलता है। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा, मगर देने वाला सतपुरुष दयाल है। उससे दुनियाँ माँगोगे, दुनिया मिलेगी, दीन माँगोगे दीन मिलेगा। उससे उसको माँगोगे, मिलेगा। मगर हर चीज़ की क़ीमत देनी पड़ती है। अगर उस प्रभु को पाना चाहते हो तो अपने को ख़त्म कर दो। जीते जी मरना पड़ेगा। ऐसा किस तरह हो ? इसके लिए तीन बातें ख़ास हैं -:

(1) Character Formation - यानी इख़लाक़ सच्चाई को - सुधारना (चरित्र) करो (ग्रहण) क़बूल, बुराई को छोड़ते चलो। बुराई को छोड़कर नेकी पर आ जाओ। जो सोचो, अच्छा ही सोचो। जो करो, अच्छा ही करो। अपनी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि को शुद्ध करके discipline (अनुशासन, नियंत्रण में लाओ (। बुद्धि ईश्वर में लीन हो, यानी बुद्धि की सलाह से काम करें। इन्द्रियाँ मन की मातहती में काम करें।

(2) Cooperate with the Mother - यानी प्रकृति माँ के साथ मिल कर चलो। यह दुनियाँ और इसके सामान, लड़केबाले-, स्त्री, कुटुम्बी, दोस्तसब प्रकृति माँ का - अहबाब- रूप है। उनसे मिलकर चलो, लेकिन अपने को उनसे अलहदा समझो। कोई हमेशा नहीं रहेगा। लड़का पैदा हुआ है, मरेगा ज़रूर। फिर इससे मोह क्या ? इस तरह विवेक से बन्धन ढ़ीले करते चलो। अपने कर्तव्य पूरे करो, और अन्दर से सबसे अलग। सिर्फ़ एक मालिक सत्पुरुष दयाल को ही अपना समझो और उसी से प्रेम करो। सब प्राणी मात्र की सेवा करो। जो काम भी दुनियाँ का करो, अपने आनन्द के लिए मत करो, बल्कि ईश्वर का समझकर उसको ख़ुश करने के लिए करो। यही detachment (अलग होना है (, यही अभ्यास है। उसको duty sake (कर्तव्य समझकर करो (। यही माँ के साथ मिलकर चलना है। आनन्द के लिए ईश्वर का नाम लो, उसका ध्यान करो।

(3) तीसरी चीज़ है सन्तों की सोह्बत (सत्संग)। महापुरुषों की सोह्बत करो। उनके सत्संग से लाभ उठाओ। गुरु के वाक्यों को ब्रह्म (अभ्यास) वाक्य समझकर उन पर अमल- करो। उनके चरणों में प्रेम पैदा करो और अपने आपको मेट दो। आगे चलकर यही प्रेम ईश्वर प्रेम में तब्दील हो जायेगा।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. कृष्णलाल जी महाराज)

गुरु के चरणों की सेवा

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

बार-बार गुरु का स्मरण करना या बार-बार उनका ध्यान करना, इतना ही काफी है, और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। परन्तु गुरु सच्चा हो। उसकी सेवा के लिए सन्तों की वाणी में बार-बार आदेश दिया है। गुरु के चरण क्या हैं ? सच्चा गुरु आपने चरणों की सेवा कराने के लिए, अपनी पूजा कराने के लिए कभी तैयार नहीं होता। तो फिर क्यों कहा गया है कि गुरु के चरणों की पूजा करो। जो व्यक्ति गुरु के शारीरिक चरणों का ध्यान करता है उसके भीतर में दीनता आती है। हम लोग शरीर का ध्यान करते हैं। जो चरणों का ध्यान करता है वो अति दीन होगा। चरणों की सेवा का दूसरा मतलब यह है कि जो गुरु का उपदेश है, आदेश है, उसका पालन करना, चूं-चरा नहीं करना। हमें अभिमान आ जाता है, बड़े-बड़े साधक हैं उन्हें भी अभिमान आ जाता है।

लालची गुरु इस विचार से कि शिष्य उनसे नाता न तोड़ ले उसकी इच्छा के मुताबिक उपदेश देते हैं। वे शिष्यों के मन को मोटा बनाते हैं और दुनियाँ में फंसाये रखते हैं। ---------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द अभ्यास

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (लाला जी))

आत्मा या रूह जिसका वर्णन बारबार आया है-, इस श्रष्टि में सबसे अनोखी चीज़ है । यह ही सबसे महान एवं सार सत्य है । उस सूर्य की किरण या उस समुन्द्र की एक बूँद है जिससे हम अलग नहीं हैं और वही आत्मा का भण्डार है वही जीवन का केन्द्र एवं स्रोत है - और इसी केन्द्र से विलग अथवा दूर हो जाना ही वास्तव में हमारे दुखों का कारण होता है। आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द के अभ्यास से आशय यह है कि हृदय में इस केन्द्र का इष्ट बांधकर अर्थात उस आदर्श को हृदय में स्थित करके संत सद्गुरु से भेद) मालूम करके इसके खोज की चेष्टा की जाये (यानी अभ्यास का तरीक़ा । यदि किसी तरह तुम्हारे अन्तःकरण में यह भाव पैदा हो जाये कि सतपुरुष मालिक हमारा केन्द्र है और हम उससे निकले हैं तो तुम में प्रेम के भाव प्रस्फुटित होकर तुम्हें विशेष प्रकार की अवस्था प्रदान करेंगे, जिससे स्वतः ही आत्मा तथा माया आदि की समझ आती जाएगी । यह केन्द्र पूर्णतः आत्मिक है और शुद्ध चेतन है । इसमें नाम मात्र को भी काल और माया नहीं है । ज्यों - ज्यों तुम्हारे आवरण उतरते जायेंगे और आत्मिक प्रकाश की अनुभूति का अवसर मिलता जायेगा, वैसे ही वैसे इसी जन्म में प्रेम प्राप्त होता जायेगा । जिन लोगों में अब तक आध्यात्मिकता जाग्रत नहीं हुई है, वे इस केन्द्र से बहुत दूर हैं । जिनके आवरण उतर गए हैं वे अपेक्षाकृत उससे अधिक निकट हैं । जितना उस केन्द्र से बिलगाव और दूरी होती जाएगी उतने ही आत्मपथ पर माया के आवरण पड़ते जायेंगे और जितना अधिक केन्द्र से - निकट आते जायेंगे उतनी ही आत्मिक आनन्द की अनुभूति बढ़ती जाएगी ।

अभ्यास

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

)

अभ्यास या पूजा में बठते समय सिवाय ईश्वर के ख़्याल के और कोई ख़्याल सामने न हो। यदि कोई संसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास में बैठते हैं तो उसका मन और सुरत दोनों उस समय उस संसारी काम या उसके विचार से परिपूर्ण हैं, उस समय उनका प्रवाह नीचे की ओर हो रहा है और उसी नीचे की ओर (सांसारिक) प्रवाह में वह बहा जा रहा है। ऐसी स्थिति में मन ध्यान में नहीं लगेगा। मन को प्रभु के रंग और ईश्वर चिन्तन के गहरे चाव के रंग में रंगना चाहिए, तब वह संसार की बातों से हटकर अभ्यास में लगेगा। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि कोई ऐसा भजन, ग़ज़ल या प्रार्थना जिसमें ईश्वर प्रेम या विरह भरा हुआ हो, दिल से तन्मय होकर गायें और उसके साथ ही साथ अपने संसारी विचारों की ओर प्रवाहित होने से रोककर अन्तर्मुखी बनायें। जैसे ढ़ोलक या किसी और बाजे की ताल पर नाचता हुआ नट रस्से पर चढ़ता हुआ चला जाता है और उसी तरह से भक्ति-भाव और प्रेम भरे उस भजन की तान पर मन और सुरत थिरकते हुए अन्तर में ऊपर की ओर चढ़ाई करने लगते हैं और इस प्रकार अभ्यास में कुछ रस और आनन्द मिलने लगताहै।

जिसने सतगुरु का सत्संग कर लिया है और रास्ता चल लिया है वह छोडकर जाएगा कहाँ ? उसकी हालत ऐसी हो जाती है जैसे जहाज़ का कौआ।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ . श्रीकृष्ण लालजी महाराज)

गुरु का ध्यान नहीं आता ?

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज)

कई अभ्यासी कहते हैं कि उनको गुरु का ध्यान नहीं आता। दो बातें हो सकती हैं - या तो आपका मन सत्संग से बिलकुल ही उचाट खा चुका है, सत्संग के प्रति कोई स्नेह नहीं रहा है, या यह है कि आपके अभ्यास में काफ़ी प्रगति हो गयी है। ध्यान के यह आयाम होते हैं जिनमें क्रमशः गुरु का स्थूल रूप ख़त्म हो गया है, गुरु का सूक्ष्म रूप भी आपकी स्मृति में ख़त्म हो गया है। अब गुरु का और ही रूप यानि कारण रूप (परमात्मा) ही रह गया है। वैसे तो परमात्मा का कोई रूप नहीं, रंग नहीं, आकार आदि कुछ नहीं, परन्तु हर साधक के अन्तर में एक भावना रहती है। बाहर उसका कोई रूप नहीं है। परमात्मा का भी कोई निश्चित रूप नहीं है। यदि साधक आत्म-स्थित है तो यह आपकी प्रगति है कि आपके ध्यान में गुरु का रूप आता ही नहीं। सावधान रहना है कि यदि भीतर में तामसिकता या राजसिकता है और तब गुरु का ध्यान नहीं आता, तो यह आपकी कमज़ोरी है। आपकी गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा नहीं है। यहाँ बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

दिल का सुधार करो। उसे बहकने मत दो। शत्रु के साथ कभी अभद्र व्यवहार मत करो।

संतमत में अभ्यास से अभिप्राय यह है कि आत्मा और मन जिसकी ग्रंथि इस स्थूल यानी पिण्ड शरीर में बंधी हुई है, वह खुलने लगे, आत्मा मन के फन्दे से न्यारी होकर उसकी चाल ब्रह्माण्ड की ओर हो और फिर चढ़ाई करके संतों के देश, दयाल देश तक पहुँचे।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

गुरु कृपा

---------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज

निर्वाण के बाद पूज्य गुरुदेव अदृश्य रूप से हम सबके साथ हैं। उनकी नजदीकी का एहसास करने के लिए यह आवश्यक है की हम उनके और अपने बीच कोई ओट खड़ी ना करें अर्थात अपने मन को साफ रखें । दिल का शीशा जितना साफ होगा उसमें उतना ही साफ ऑक्स दिखेगा । गंदे पानी में सूर्य या चांद का अक्स दिखाई नहीं देता किंतु स्वच्छ सरोवर में वह स्पष्ट दिखता है। अपने अंदर के कीचड़ को, गंदगी को साफ कीजिए और उसमें गुरुदेव को दर्शन प्रेम या प्रकाश रूप में कीजिए । गुरुदेव कहा करते थे कि जिस बर्तन में पहले ही कुछ भरा हो उसमें क्या कुछ भरा जा सकता है ? अतः दिल में भरी है गंदगी, उसे बिना उलीचे ईश्वर का प्रेम कैसे भरा जा सकता ? जब दिल साफ हो जाता है, तब उसमें प्रीतम का जलवा हर वक्त नजर आता है।

इसी शक्ति (ब्रह्मांड या आत्मिक) और आत्मा में अंश और अंशी का भेद है। जिस तरह पानी की बूँद की चाह होती है कि वह अपने आपको समुद्र में पहुँचा दे, इस तरह हरेक आत्मा की यह ख्वाहिश रहती है कि वह अपने आपको निज घर में पहुँचा दे ।

---------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

ईश्वर के साथ मिलने का तो हम इरादा रखते हैं मगर ईश्वर की मखलूक के (सृष्टि) क्या होता है (व्यवहार) साथ हमारा सलूक?

(ब्रह्मलीन आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी ल)ाला जी (महाराज (

अब सोचने की बात है, ईश्वर ही प्रेम और मुहब्बत है, इसको मामूली दिमाग़ वाला भी जान सकता है । जब जो आदमी ईश्वर को दिल देगा कैसे हो सकता है कि उसमें मुहब्बत के जज़्बात पैदा न हों (भावनायें)? जो दिल में रहता है वही बाहर असर दिखाता है । दिल के ख़्याल ही हमारे रोज़ाना बर्ताव में अपने ज़ाहिर होने के अजीबोग़रीब अद्)भुत नज़्ज़ारे (रोज़ दिखाया करते हैं-रोज़ (दृश्य) । अब इस मौक़े पर सोचना चाहिए कि ईश्वर के साथ मिलने का तो हम इरादा रखते हैं मगर ईश्वर की मखलूक के साथ हमारा सलूक (सृष्टि) क्या होता है (व्यवहार)? इस जगह हमारा प्रेम कैसेइस क्या .कैसे रंगोरूप भरा करता है - पर कभी किसी ने ग़ौर किया है ? अगर ग़ौर नहीं किया है तो आज हमारे साथ थोड़ी देर के लिए हमारे हमख़्याल हमज़बान (विचार मिलाकर)(समवाणीहोकर (, अगर ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही ग़ौर करो । उस प्रेम की मुख़तलिफ़ सूरतें नज़र आने लगेंगी जिनको (विभिन्न) हो जाओगे (खुश) बाग़ -देखकर बाग़ । प्रेम की चाल इकरुख़ी होती है मगर (एकांगी) (असीम) होता हुआ लामहदूद (सीमित) भी है वह महदूद (विपरीत भाव) उसमें इख़्तेलाफ़ है (इच्छुक) बनने का भी मुश्ताक़ ।

प्रत्येक सत्संगी का व्यवहार सामान्य व्यक्ति से ऊँचा होना चाहिए।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

मन की हालत

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

यह बात निश्चित है कि अभ्यास के समय यदि संसार के कामों तथा व्यवहार का विचार आवेगा तो उस समय मन और सुरत का प्रवाह अन्तर्मुखी न होकर उस इन्द्रिय की तरफ़ होगा जिसके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता है। जैसे यदि किसी स्वादिष्ट पदार्थ का ध्यान आता है तो मन और सुरत की धार स्वादेन्द्रिय यानी रसना या जीभ की ओर होगी। यदि किसी सुन्दर दृश्य का ध्यान आता है तो मन ओर सुरत की धार नेत्रों की ओर होगी। इसी तरह कान ओर अन्य इन्द्रियों का भी यही हाल है। यह इन्द्रियाँ मनुष्य की वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाती हैं और उसके ध्यान या सुरत (attention) को बाहर की ओर यानी दुनियाँ की तरफ़ ले जाती हैं। यह भी बात निश्चित है कि मन के द्वारा एक समय में एक ही काम हो सकता है, या तो वह अपने अन्तर में धंस कर ईश्वर का चिन्तन करे, प्रकाश रूप का दर्शन करे, या शब्द का श्रवण करे।

सम्बन्ध केवल उन्हीं चीज़ों से रखो जिनके बिना जीवित नहीं रह सकते। मन और स्त्री का रूप एक समान है। दोंनों ही चंचल हैं। साँसारिक वैभव की चाह दोंनों को रहती है। अतः इस पर नियंत्रण होना चाहिए। दुनियाँ में हर व्यक्ति अपने आपको अच्छा समझता है और दूसरों को बुरा। अतः दोष अपने देखो और गुण दूसरों के देखो।

-------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

दीनता और अहंकार

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज)

दीनता परमार्थ में अनिवार्य है और अहंकार बाधक है। जहाँ दीनता नहीं, वहाँ परमार्थ की उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए साधक को चाहिए कि यह निरन्तर अपने अन्तर में टटोलता रहे कि वह अभिमान की ओर तो नहीं जा रहा। अपने अहं को सत्संग, विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा समाप्त कर देना चाहिए।

वास्तव में, ईश्वर की मौज में निरन्तर प्रसन्न रहना ही दीनता है। दीन पुरुष अपना कुछ नहीं समझता। वह सब कुछ ईश्वर का ही समझता है। इसलिए यदि कुछ प्राप्ति होती है तो उसे हर्ष नहीं होता, वह उसका गर्व नहीं करता, और यदि कुछ हानि होती है तो वह अप्रसन्न नहीं होता। वह तो एकरस रहता है। वह तो सब कुछ ईश्वर को ही समझता है।

" जब हम स्वयं को महत्व देने वाली चेतना खो देते हैं और अहंकार से पूरी तरह मुक्त होकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो भी करते हैं तो सिर्फ वही होगा जिसे होना चाहिए ! अगर यह दशा मिल जाए तो ईश्वर के द्वारा प्रदत्त यह सर्वोत्तम दशा है ! हर एक को इस दशा को पाने का प्रयत्न करना चाहिए " !

समर्थ गुरु ब्रह्मलीन परमसंत रामचन्द्र नजी महाराज

ख़ुदा के दर्शन की तलब को तेज़ करते रहो

(ब्रह्मलीन आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी (महाराज (लाला जी)

एक जिज्ञासु किसी फ़क़ीर के पास गया और कहा, " मुझे ख़ुदा के दर्शन करा दो । " को जान गया और कहा सब्र से काम लो (भावनाओं)) फ़क़ीर उसके जज़्बातों । मगर ' उताबला सो बाबला ' नादान को सब्र कहाँ ? बोला, " नहीं बाबा, जल्दी होना चाहिए " फ़क़ीर ने उसकी गर्दन पकड़ करअपनी धूनी में डालनी चाही । धुआँ लगा, घबराया, कश्मकश करने लगा । फ़क़ीर ने छोड़ दिया, तब उसकी जान में जान आयी । तब उसने पूछा कि आग के पास तुझे किस बात की ख़्वाहिश हुई" । दम घुटता " उसने कहा कि " था, हवा चाहता था और आग से बचने की तलब थी । साधु ने कह "ा, " बेटे । यह संसार आग का घर है, इससे जब तक किसी क़िस्म की नफ़रत न हो और मालिक के चरणों में जाने की ऐसी ही ख़्वाहिश न हो जैसी तुझे आग से बचने की और खुली हवा में सांस लेने की हुई थी, तब तक तू अधिकारी नहीं बन सकता। जा, तलब को तेज़ करता रहफिर . कभी उसका भीवक्त आएगा । "

दुःख की जड़ इच्छाओं में है। इच्छाएं जितनी अधिक होंगी दुःख भी उतना ही अधिक होगा । इसलिए इच्छाओं को कम करो ।

---------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

पारिवारिक जीवन कैसे व्यतीत करें ? सब महापुरुषों की वाणी में, सब शास्त्रों में ये वर्णन है कि यदि स्त्री और पुरुष (पति-पत्नी) में पूर्ण सहयोग है, वे दो शरीर और एक मन हैं, तो पति-पत्नी के इस प्रेम से ही आत्मा की अनुभूति हो सकती है, ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। यह तो आप सब ने सुना ही है कि पति जितना साधन करता है, कमाई (आधात्मिक कमाई) करता है, और पत्नी उससे प्रेम करती है तो पति की आधी कमाई पत्नी को मिल जाती है। इस प्रकार से यदि पत्नी कमाई करती है और पति उससे प्रेम करता है तो पति को पत्नी की आधी कमाई मिल जाती है। ये बिलकुल सच है। इसमें तर्क नहीं करना चाहिए। जिस परिवार में प्रेम नहीं है, आपस में सहयोग नहीं है, वहाँ सुबह से शाम तक कीर्तन होता रहे या और कुछ साधन हो, उसका कोई लाभ नहीं। जिस परिवार में प्रेम है, शान्ति है, आनन्द है, सहयोग है, सब लोग एक दूसरे के लिए तन, मन, धन न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं, एक ने कहा दूसरे ने मान लिया, कोई तर्क नहीं करता, वहीं परलोक का सुख है। वहीं आत्मा की समीपता है।

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

जीवात्मा जब तक अपने निजधाम में नहीं पहुँच जाती उसे स्थायी सुख, चैन और शान्ति नहीं मिलती। इसीलिए हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने घर की सुध ले।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

संतमत के जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास के मामले में जल्दी नहीं करनी चाहिए। धैर्य से काम लेकर रास्ता धीरे-धीरे चलना चाहिये।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

आत्मा की अनुभूति तभी होती है जब मन की चंचलता ख़त्म हो जाती है तथा मन स्थिर हो जाता है। मन तभी स्थिर होता है जब मन में सद्विचार उठते हैं, मुख से मधुर वाणी निकलती है, व्यवहार से सद्गुणों का विकास होता है, तब जाकर मन स्थिर होने का अधिकारी बनता है। जैसे ही मन स्थिर हुआ कि आत्मा का प्रकाश होने लगता है। यदि पारवारिक जीवन में ये तीन गुण हों - सहयोग हो, मधुरता हो, एक दूसरे के लिए बलिदान देने के लिए तैयार हों, तो दोनों शरीर (पति-पत्नी का शरीर) भले ही पृथक-पृथक दिखते हों, परन्तु उनकी जीवन एकसुई का होगा, भिन्नता का नहीं होगा। उस एकता में दोनों के मन स्थिर हो जायेंगे और वे अधिकारी हो जायेंगे। अगर उनका जीवन इसी तरह प्रेममय होता गया तो एक क्षण ऐसा भी आयेगा कि तब उनके भीतर में जो आत्मा है उसका विकास हो जायेगा। हम जानते हैं कि जब दो व्यक्ति मिलते हैं, प्रेम करते हैं, तो प्रेम में वे अपने आपको भूल जाते हैं। दो-चार क्षण मौन के ऐसे आते हैं जब दोनों व्यक्ति अपने आपको भूल जाते हैं। भीतर में एक पवित्र, शान्तिमय, मौन के सूर्य का उदय हो जाता है। ये आत्मा की समीपता है, और इसे ही बढ़ाना है।

संतमत का अभ्यास बहुत सरल है परन्तु मन का बहाव संसार की तरफ़ होने के कारण अभ्यासी इसमें कठिनाई का अनुभव करता है। अभ्यासी को चाहिये कि सच्चे मन से अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाये और जो लगन संसार की तरफ़ लगी है उसे शनैः-शनैः छोड़ता जाये। इस काम में सदा सतर्कता के साथ अपने मन की चौकसी करता रहे और यह देखता रहे कि मन क्या-क्या तरंगे उठाता है। जो तरंगें संसार तथा विषयों की तरफ़ ले जाती हैं और जो परमार्थ पथ में बाधक हैं, उन्हें रोके, बढ़ावा न दे और जो तरंगें परमार्थी विचारों को बढ़ावा दे, उन्हें प्रोत्साहन दे।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जिस तरह सुरत इस देह में विभिन्न चक्रों में बैठकर, अपनी धार की ताक़त से कुल कार्यवाही उस देह की कराती है, उसी तरह सत्पुरुष दयाल जो सब सुरतों को शक्ति देने वाले और प्रेरक हैं, हरेक के घट में मौजूद हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। जो अपने ही घट में विराजमान हैं, उनसे प्रीत और प्रतीत करने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। लेकिन मन ऐसा होने नहीं देता। वह अपनी चतुराई और तदबीर से मालिक का पूरा-पूरा भरोसा , जैसा होना चाहिये, वैसा होने नहीं देता। इसका कारण यह है कि जिस काम को करने के लिए उसको सुपुर्द किया है, उसे पूरे भरोसे के साथ नहीं करता। उसमें अपनी अक़्लमंदी और तदबीर ज़रूर अड़ा देता है, और चाहता है कि वह काम उसकी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो। अगर इसके मुताबिक़ नहीं होता तो दुःखी होता है और सोचता है कि अगर मैं अमुक उपाय करता तो काम ठीक हो जाता, या अमुक बात में कसर रह गयी। उसको मालिक की मौज़ नहीं समझता। जो ऐसे मन हैं वे पूरी तरह शरण में भरोसा नहीं रखते। उन्हीं को मनमत कहते हैं। वे परमात्मा से विमुख हैं।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ .श्री कृष्णलाल जी महाराज)

" नानक गुर पूरे नमस्कार "

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

गुरुदेव भी ऐसे पूरे गुरु को नमस्कार करते हैं। ऐसे पूरे गुरु से उनके जीवन काल में भी लोगों को लाभ होता है और उनके शरीर छोड़ने के बाद भी - यदि हम सच्चे हृदय से उनको याद करें। सन्त मरता नहीं है, वो ईश्वर की तरह ही हमेशा हमारे साथ रहता है। आत्मा-परमात्मा का कभी नाश नहीं होता। गुरु के जीवन काल में हमें उनसे जितना लाभ मिलता है, उनके शरीर छोड़ने के बाद भी वह लाभ मिलता है। पूज्य गुरु महाराज (ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) ने हमें विश्वास दिलाया था कि "जो इस समय हम कर रहे हैं, जो इस समय हमारी प्रकृति है, हमारे शरीर छोड़ने के बाद भी वही प्रकृति होगी। जो इस वक्त हमारे पास बैठकर भाइयों को लाभ होता है, वो यदि सच्चे हृदय से हमारे शरीर छोड़ने के बाद भी याद करेंगे तो तब भी उनकी वही लाभ होगा जो उन्हें हमारे जीवन काल में होता है। "

तो आपसे निवेदन है कि काम करते, खाते-पीते, सोते-जागते, हर समय उस प्रभु की याद में रहें। यदि इस प्रकार हर समय हमारा ध्यान प्रभु के चरणों की तरफ हो तो भला हमें क्यों नहीं लाभ होगा ?

नाम के स्मरण का रस तथा स्वरुप के ध्यान का रस जिस विधि से गुरु ने बताया हो, अभ्यास करके प्राप्त करना चाहिए। आन्तरिक शब्द का रस (चाहे वह सहसदल कँवल का हो, त्रिकुटी का या अन्य किसी ऊँचे स्थान का) इतना आकर्षण रखता है कि यदि ध्यान उधर लगा दिया जाये तो वह मन की धार को संसार की ओर से हटाकर अपनी ओर खींच लेगा। अभ्यासी को चाहिये कि शब्द की धार को पकड़ने का प्रयत्न करें। जैसे-जैसे शब्द का रस अधिक मिलेगा तो वह धार इसी तरफ़ को बढ़ती जायेगी और जितनी देर वह धार इस स्थान पर ठहरेगी, जहाँ वह शब्द हो रहा है उतनी देर वह ख़ूब रस देगी। इस तरह अभ्यास करने से मन की चाल दुनियाँ की तरफ़ को तथा इन्द्रियों की ओर को कम होती जायेगी और ऊपर की चढ़ाई करने में आसानी होगी।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जो चीज़ ईश्वर से अलहदगी (दूर) करे, जो मालिक से दूर ले जाये, उसे त्याग दो। कोई भी कर्म जो मालिक से दूर ले जाये, 'पाप' है, जो कर्म मालिक से नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो वही 'पुण्य' है।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ के पथ पर कभी संतुष्टि नहीं होनी चाहिये

(परमसंत डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

परमार्थ के पथ पर कभी संतुष्टि नहीं होनी चाहिये, तृप्ति नहीं होनी चाहिये। कभी थकावट नहीं आनी चाहिये। हाँ, दुनियाँ के पथ पर आ जानी चाहिये। पचास साल की उम्र हो गयी, अब वानप्रस्थ ले लीजिये। पचहत्तर साल की उम्र हो गयी, अब सन्यास ले लीजिये। सन्यास का मतलब है कि जहाँ-जहाँ आपका मन फँसता है वहाँ-वहाँ से उसको स्वतंत्र करके ईश्वर के चरणों में लगाओ। पूर्ण वैराग हो, अपने शरीर से तथा अन्य वस्तुओं से भी। किसी वस्तु, किसी भी चाह, किसी मनुष्य के प्रति कोई आसक्ति नहीं।

पूर्ण सन्यासी गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, यानी अपना जो मोह, इच्छा और अज्ञान है, उसको अग्नि में जला देते हैं। सन्यासी का नाम भी बदल दिया जाता है। उसके जो क़ानूनी अधिकार होते हैं, न्यायालय उनको नहीं मानता। वह क़ानून की नज़रों में मर जाता है। इसलिए सन्यास में पूर्णतः मर जाना चाहिए। यह ज़रूरी नहीं है कि पचहत्तर वर्ष की उम्र में जाकर ही हम ऐसी 'मृत्यु' की तरफ़ भागें।

हमारे संतमत में हम दुनियाँ को भोगते हैं और साथ-साथ दुनियाँ का त्याग भी करते जाते हैं। दुनियाँ को भोगते हैं और ईश्वर की याद में रहते हैं। गुरु महाराज का आदेश था कि दुनियाँ को भोगो परन्तु ईश्वर की याद में। भय और हर्ष - दोनों अवस्थाओं में उसका स्मरण करो। उसकी स्मृति में सारा कार्य-व्यवहार करो। आप दफ़्तर में बैठे हुए हैं, आपको मालूम है कि आपका अफ़सर बैठा हुआ है तो आप कोई ग़लत व्यवहार नहीं करेंगे।

अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हमारे तरीक़े के भाइयों को जिन्हें अभ्यास में आनन्द तो आता है लेकिन आचरण ठीक नहीं हुआ है, घबराना नहीं चाहिए। यह रास्ता बहुत लम्बा व कठिन अवश्य है परन्तु सफलता उन सभी को मिलती है जो इस पर बराबर चलते रहते हैं। इसका अन्त भी बेमिसाल है यानी इसकी प्रीति के पश्चात कुछ और प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए - (1) जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करे। (2) आन्तरिक अभ्यास - ध्यान, भजन, सुमिरन और मनन करते रहें। यहाँ तक कि एक सेकिण्ड के लिये भी अभ्यास को न छोड़ें। (3) अपने मन के ख़्यालों पर हमेशा निगाह रखें और बुरे ख़्यालों को हटाकर अच्छे ख़्याल कायम करते रहें। निश्चित है कि फ़ायदा होगा।

दूसरों की बुराई और कमी को कभी मत देखो। ज्ञानवान केवल यह देखता है कि मेरा अपना काम पूरा हो। मैंने उसे अधूरा तो नहीं छोड़ दिया। जब तक बुरे कर्म का फल नहीं मिलता अज्ञानी उसे मीठा समझता है, लेकिन जब वह पक जाता है और फल देने लगता है तब कटुता असहनीय हो जाती है।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

जो आता है दुनियाँ के लिए रोता है।

ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

जो आता है दुनियाँ के लिए रोता है। संतों के यहाँ दुनियाँ नहीं मिलती। वे तो दुनियाँ उजाड़ते हैं। यह अलग बात है कि किसी का परमार्थ बिगड़ रहा है, और दुनियाँ की कोई मुसीबत ऐसी है जो उसकी तरक़्क़ी में बाधक है, उसके लिए दुआ कर देते हैं, वरना जब तक हरेक का हर वक्त यही रोना है तो कहाँ तक, किस किस के लिए, दुआ करें ? जितना दुनियाँ में फँसोगे, उतनी ही ख़्वाहिशें बढ़ेंगी, और जितनी ख़्वाहिशें रहेंगी, उतनी ज़्यादा दुःख-तकलीफें भी आयेंगी। इसलिए दुनियाँ में उतना फँसो जितने से कम में काम नहीं चलता, जितना ज़रूरी है। किसी काम को करने से पहले ख़ूब अच्छी तरह सोच लो कि क्या यह काम वास्तव में ज़रूरी है, क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा ? अगर ज़रूरी है तो करें वर्ना छोड़ दें।

बगैर इम्तहान के कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता। हर कुर्बानी करनी पड़ेगी अगर उसे पाना चाहते हो तो दुनिया की चीजें तो क्या गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी।

जबतक तन नाही जरत
मन नाही मर जात
तब लगि मूरत श्याम की
सपनेहुँ नाहि लखत।

समर्थ गुरु परम् सन्त डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

विवाह में हम फेरों पर बैठते हैं। लड़का (वर) विष्णु भगवान का प्रतीक बनता है। वह परमात्मा रूप, परमात्मा का प्रतीक अग्नि जो स्वच्छ है, पवित्र है, उसी के आगे शपथ लेता है कि मैं परमात्मा विष्णु का प्रतीक स्वरुप बनकर, लक्ष्मी-रूप स्त्री (पत्नी) की रक्षा करूँगा, उसकी सेवा करूँगा, उस पर सब कुछ न्योछावर कर दूँगा। इसी प्रकार लड़की (वधु) भी लक्ष्मी का रूप बन कर शपथ लेती है कि जैसे लक्ष्मी जी ने विष्णु भगवान की सेवा की, उसी प्रकार मैं अपने पति की सेवा स्नेह के साथ करूँगी। दोनों ही उस पवित्र अग्नि के फेरे लेते हैं जो इस शपथ को दृढ़ करने का तरीक़ा है। परन्तु इस वक्त, फेरे के समय, इतना शोरगुल मचता है कि जो शपथ हमने ली उस शपथ को भूल जाते हैं कि हमने क्या शपथ ली। इसीलिए हम देखते हैं कि आजकल परिवारों में सुख नहीं है, शान्ति नहीं है। इसका कारण यही है कि हम अपने दायित्वों को भूल जाते हैं। पति-पत्नी एक दूसरे को दोष देते हैं जबकि उन्हें एक दूसरे को दोष नहीं देना चाहिए। उस पवित्र अग्नि के समक्ष बैठकर जब दोनों एक हो गए, प्रेम रूप हो गए, तो फिर दोष किसको दें ? प्रेम में विभाजन नहीं है, प्रेम में एकता है, प्रेम में सुख है, शान्ति है। प्रेम में ही आत्मा परमात्मा है। पारिवारिक जीवन में परमात्मा की अनुभूति करने का बड़ा सरल साधन है। जितने भी महर्षि, जितने भी देवता, भगवान राम, कृष्ण, वशिष्ठ ऋषि आदि हुए हैं उन सबने गृहस्थ आश्रम को ही अपनाया है। हमें चाहिए कि हमारे महापुरुषों ने इस पवित्र जीवन जीने का जो रास्ता बताया है, हम उसको अपनाने का प्रयास करें। बाधायें आयेंगी, हमें उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ईश्वर का आश्रय लेकर, ऊँचे आदर्शों को ग्रहण करते हुए, अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(परमसंत डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

प्रभु के गुणों को अपने में विकसित कीजिये

ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ . करतारसिंह जी महाराज

प्रभु करुणासागर हैं, दयानिधि हैं, सब का पालन पोषण करते हैं। हम प्रभु की उपासना करते हैं किन्तु प्रभु के गुणों को नहीं अपनाते। यह कैसी पूजा है ? यह कैसी साधना है ? हम जड़ समाधि पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं कि हमारा मन स्थिर हो जाये। केवल इतने से कुछ नहीं होगा। यह देखिये कि प्रभु के गुण हमारे में विकसित हो रहे हैं या नहीं। वे गुण हमारे व्यवहार में विकसित हो रहे हैं या नहीं ? हमारी जिह्वा में, हमारी वाणी में मधुरता आ रही है या नहीं। क्या हमारी वाणी, हमारे शब्दों के कारण किसी दूसरे को दुःख पहुँचता है ? यदि पहुँचता है तो हम प्रभु से कोसों दूर हैं।

हमें तो मानो गंगा के प्रवाह में अपने आपको समर्पित कर देना है। करना-कराना कुछ नहीं। प्रवाह जिधर भी ले जाए उसी के साथ बढ़े चलें। कोई अवरोध नहीं करना है, कोई प्रयास नहीं करना है। इस प्रकार होना है जैसे कि कलाकार पत्थर को एक सुन्दर मूर्ति के रूप में ढ़ाल देता है। साधक को स्वयं को भी इसी प्रकार उस महानतम कलाकार (परमात्मा) के हाथों में छोड़ देना है।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

गुरु-भक्ति का भेद

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

शिष्य का प्रश्न - " इस गुरु भक्ति (पीर परस्ती) का असली भेद क्या है ?

गुरु का उत्तर - गुरु से शिष्य को ब्रह्मविद्या का बीज मिलता है। जब उसकी बीज-रूप शक्ति शिष्य में प्रवेश कर जाती है तो वह स्वयं गुरु-रूप ही हो जाता है। आटे में एक चुटकी ख़मीर डाल दो तो सब आटा ख़मीर हो जायगा। गरम दूध में थोड़े से दही का जामन दे दो, सारा दूध वगैर महनत के स्वयं दही के रूप में परिणित हो जायेगा क्योंकि दही ने दही होने की कमाई पहले से कर रखी है। जलते हुए दीपक से ही बुझा हुआ दीप जलाया जाता है। जागा हुआ मनुष्य ही सोते हुए मनुष्य को जगा सकता है। तैराक़ ही डूबते हुए को पानी के बाहर निकाल सकता है। दूसरों से यह सम्भव नहीं है। क्या तुम नहीं देखते कि विद्वान मनुष्य प्रभाव शून्य होते हैं ? जहाँ अभ्यास और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का प्रश्न आता है, परीक्षा के समय वह मुँह के बल गिरते हैं क्योंकि उनमें कमाई नहीं होती। कमाई का हिस्सा किसी कमाई किये हुए से ही मिलता है, अन्य से नहीं। यह सच्ची और सही - सही बातें हैं। यदि ऐसे महापुरुष से शक्ति ली जाय जो आत्मज्ञानी हो तो वास्तविक फ़ायदा होगा, अन्यथा नहीं। इस शक्ति के विभिन्न नाम हैं। सूफ़ियों में इसे 'फ़ैज़' के नाम से पुकारते हैं। सिखों में इसे 'अमृत' का नाम दिया है। वही अमी-रस है। वास्तव में यह गुरु का दान है जो वह शिष्य को अपनी कमाई में से देता है। शिष्य के लिए यही अनमोल भिक्षा है और भिक्षा तब मिलती है जब दीनता और भक्ति पूर्वक बन कर जाय और - " द्वार धनी के पड़ रहै, धका धनी का खाय "। तब किसी क्षण गुरु कृपा करेंगे और अमृत यानी 'फ़ैज़' बख़्शेंगे।

मन एकाग्र कैसे हो ?

ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ . करतार सिंह जी महाराज

लोग-बाग़ कहते हैं कि हमारा मन एकाग्र नहीं होता। मन एकाग्र कैसे हो ? आपकी लगन कितनी है ? एकाग्रता की विशेष चिन्ता न करें। प्रेम की चिन्ता करें कि हमारा गुरु या ईश्वर की तरफ़ प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं बढ़ता ? हम संसार के व्यक्तियों से, जिनके साथ हमारा व्यवहार है, थोड़ा बहुत भय रखते हैं। परन्तु ईश्वर के साथ हमारा कोई भय का भाव नहीं है। अपने मन से पूछिए कि क्या हम ईश्वर या गुरु का भय रखते हैं ?

इसलिए पहले सतगुरु को अपनाइये। ईश्वर से प्रेम, व्याकुलता, विरह, उत्पन्न कीजिये। मन एकाग्र होता है या नहीं, यह साधारण बात है। इसकी कई तकनीक हैं। मन एकाग्र होने में दिक्क्त नहीं होती। किन्तु प्रेम उत्पन्न होने में देर लगती है, दिक्क्त होती है। जो पुराने अभ्यासी हैं उन्हें इस ओर और अधिक समय देना चाहिए क्योंकि उन्हें अपने इस जीवनकाल में ही अपने स्वरुप में या गुरु स्वरुप में या परमात्मा के चरणों में स्थित होना है। सिर्फ थोड़ा-थोड़ा, कभी-कभी, प्रकाश देख लेना या कभी-कभी शब्द सुनाई आ जाये तो शुक्र है, आपका रास्ता गलत नहीं है, लेकिन मन्ज़िल अभी दूर है।

जिस तरह आदिशक्ति अपने स्थान पर बैठी हुई तमाम श्रष्टि का पालन-पोषण करती है उसी तरह आत्मा अपने स्थान पर बैठी हुई सारे शरीर की देख भाल करती है।

----------परम संत डॉ . करतार सिंह जी महाराज

गुरु कृपा के बिना कुछ नहीं होता

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

श्रीमद्भागवत गीता में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना महाकठिन है। रामायण में भी इसी बात को दोहराया गया है, और सब संत-महात्माओं का भी यही मत है। अतः भगवान के किसी न किसी रूप को इष्ट मानकर सगुण की भक्ति और उपासना करनी चाहिये। यदि भक्ति सच्ची है, तो भगवान के जिस रूप का ध्यान किया जायेगा, उसी रूप में दर्शन होंगे। भक्ति के लिए मन निर्मल होना चाहिये। किन्तु मन में दो बड़े-बड़े दोष हैं - एक है विक्षेप और दूसरा मल। विक्षेप कहते हैं चंचल या अस्थिर स्वभाव को और मल का सीधा-साधा अर्थ है मलीनता। जब मन निमल हो जाता है, तब ईश्वर कृपा करके हमें किसी रहबर या पथ-प्रदर्शक के पास भेज देता है जिसे हम गुरु या सद्गुरु कहते हैं। वास्तव में गुरु और कुछ नहीं नर रूप में नारायण है। जिज्ञासु के लिये गुरु की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि मोक्ष देने का अधिकार केवल गुरु को ही है। मन का अन्धकार और अज्ञान बिना गुरु के दूर नहीं होता। यह गुरु ही हैं जो मनुष्य को आत्मा और परमात्मा का परिचय कराते जाते हैं। जब हम उनकी शरण में शुद्ध हृदय और निर्मल मन से जाते हैं तो वे जो कुछ भी उपदेश हमें देते हैं, उसकी छाप हमारे मन पर ऐसी गहरी पड़ती है कि धीरे-धीरे हमारे अहंकार को समाप्त कर देती है। और हमें आत्म-साक्षात्कार करा देती है। किन्तु गुरु कृपा के बिना कुछ नहीं होता।

गुरु की कृपा का पात्र बनें सतगुरु से प्रेम एवं उनकी सेवा करें -

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

संतमत में देवी देवताओं को नहीं पूजते लेकिन उनकी अवेहलना या निरादर भी नहीं करते- । केवल एक निर्गुण परमात्मा को मानते हैं और उसी की प्राप्ति संतमत का लक्ष्य (रूपअ) है। पूजा वक़्त के पूरे सतगुरु की की जाती है क्योंकि उसी के स्थूल रूपी शरीर मन्दिर में वह निर्गुण परमात्मा विराजता है । उसका स्वरुप जो अभ्यासी के अन्तर में ध्यान के द्वारा प्रगट होगा, चैतन्य और अकाल रूप है । जहाँ तक रूप, रंग और रेखा है, वहाँ तक स्वरुप स्थिति के अनुसार सूक्ष्म और प्रकाशवान होते हुए अभ्यासी के साथ जायगा और सच्चे नर्गुण पद में (अरूप), जो कि रंग, रूप, रेखा से न्यारा है, उसे पहुँचा देगा । यह बिना सतगुरु की कृपा के नहीं होता, बिना प्रीति और प्रतीति के, बिना सेवा भाव और दीन भाव के, बिना धर्मशास्त्र पर चले और बिना उसकी आज्ञा पालन के सतगुरु का कृपा पात्र कोई नहीं बन - सकता।

बाहरी सेवा सतगुरु के स्थूल शरीर तथा उनके प्यारों की और अन्तर में सेवा सतगुरु के निजरूप की सेवा यह है कि शब्द को घट में सुनना, शब्द, प्रकाश या प्रेम जैसा जिसे) के सहारे अपनी सुरत को ऊपर चढ़ाना (सतगुरु ने आदेश दिया हो। जब तक सतगुरु के प्रत्यक्ष स्वरुप के प्रति गहरा प्रेम नहीं होगा तब तक, जैसा चाहिए, न तो शब्द ही खुलेगा, न प्रकाश दीखेगा, और न अन्तर में गहरा प्रेम ही उमड़ेगा । जब तक ऐसी स्थिति पैदा नहीं होगी तब तक, यदि सतगुरु के बाहरी स्वरुप में गहरा प्रेम है, तभी थोड़ी बहुत चढ़ाई अन्तर में हो सकेगी । बस, सतगुरु से प्रेम करो जिसका मूल गुर है 'सेवा' - तन, मन, धन से सेवा ।

सतगुरु ईश्वर-रूप दया एवं कृपा के असीम भण्डार हैं

(ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

जहाँ तक बने सुमिरन, भजन और ध्यान अवश्य करना चाहिये। जिस रूप में ध्यान आ जाये वो अच्छा है। अगर शब्द नहीं आता, तो प्रकाश का ध्यान करें। ये भी नहीं होता, गुरु का ध्यान भी नहीं होता, तो उनके द्वारा बताये हुए शब्द (नाम) का उच्चारण ही करें, दिल से नहीं होता तो मुख से ही करें। ये भी न हो सके तो समय मिलने पर थोड़ा बहुत स्वाध्याय ही करें। दो एक भजन ही पढ़ लिए, कुछ प्रवचन ही पढ़कर उन पर मनन करें। फ़ायदा अवश्य होगा।

सतगुरु तो ईश्वर के रूप हैं, दया एवं कृपा के असीम भण्डार हैं। कृपा अवश्य करेंगे। लेकिन उनके प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास तो हो। उनका तो सबसे रिश्ता ही प्रेम का है। परमपूज्य गुरुदेव संत शिरोमणि महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी साहब भी यही फ़रमाते थे - " एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ। वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं, और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

जो धर्म को छोड़ देता है, झूँठ बोलता है और परलोक का मज़ाक उडाता है वह हर तरह की बुराई कर सकता है। तुमसे जो घृणा करते हैं उनसे कभी घृणा मत करो।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

ईश्वर से, गुरु से क्या माँगे ?

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ . करतारसिंह जी महाराज)

तो सिर की बाज़ी लगानी पड़ती है इस रास्ते में। कुछ माँगना नहीं है। क्या बच्चा माँ से कुछ माँगता है ? यह प्रभु का, गुरु का, विरद है कि वे अपने सच्चे सेवक की देख-भाल करें, उसकी सब तरह से रक्षा करें। सेवक तो सब कुछ अर्पण करके निर्भय हो जाता है, निश्चिन्त हो जाता है, कोई चिन्ता नहीं रहती। हम माँगे माँगते हैं कि हमारा यह काम हो जाय, वह हो जाय। ठीक है, माँगना चाहिए, बाप है गुरु, उससे माँगना बुरी बात नहीं है, परन्तु कभी-कभी। गुरु महाराज कहा करते थे, माँगने की चीज़ है, ईश्वर का प्रेम, माँगो। हमने नहीं माँगा, आप नहीं माँगते, तो क्या आपका दोष नहीं है ? हमने तो अपना समय व्यर्थ गँवाया है। हम भी पूर्ण शिष्य न बन सके। कुछ लोग पुराने बैठे हैं, गुरु महाराज ने शरीर छोड़ने के करीब दो साल पहले कहा था कि जैसा मैं बनाना चाहता था, एक भी व्यक्ति वैसा नहीं बन सका। यह उनके अन्तिम समय का खेद था। हमारा दोष है, हमारी कमी है। हम माया में, वासनाओं में फँसे हुए हैं, सम्मान के भूखे थे, जो भी साँसारिक बातें होती हैं, उनमें फँसे हुए थे।

यह कभी मत सोचो कि पाप का फल हमको नहीं मिलेगा। जैसे एक-एक बूँद से घड़ा भर जाता है वैसे ही थोड़े-थोड़े पाप से आदमी बड़ा पापी बन जाता है। दूसरे को उपदेश देने से खुद सुनना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरों को प्रभावित करने से खुद को जीत लेना –

-----(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज)

साधना के पाँच रूप

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

गुरु के सत्संग के पश्चात एक और आवश्यक बात है - आन्तरिक अभ्यास, ध्यान, भजन, सिमरन और मनन करते रहना। ये साधना के पाँच रूप हैं। जहाँ तक हो सके गुरु का सत्संग करें और तब करें - आन्तरिक अभ्यास। जब गुरु के पास बैठें तो आन्तरिक अभ्यास नहीं करना चाहिए। गुरु साधना बताते हैं कि उनके पास बैठो तो सोचो कि उनके (गुरु के) हृदय से प्रकाश आ रहा है और आपके सारे शरीर में प्रवेश कर रहा है। परन्तु जब आप अकेले बैठे हों तो शुरू-शुरू में पहला अभ्यास यही विचार करना है कि आप गुरु के चरणों में बैठे हैं। फिर आगे चलकर जैसा आपको बताया गया हो वैसा आन्तरिक अभ्यास करें।

आन्तरिक शब्द अभ्यास की एक पद्धति से जुड़ा हुआ है। कुछ अभ्यासियों को कुछ दिन के लिये हृदय में आन्तरिक अभ्यास के लिये मना कर देते हैं। पुरुषों का हृदय कुछ कठोर होता है। स्त्रीयों में कोमलता और भावुकता अधिक होती है। यदि वे हृदय केंद्र पर अभ्यास करेंगी तो शायद पागल हो जायेंगी। अधिक भावुकता में बह जायेंगी। घर के काम-काज के लिये, संसार के व्यवहार के लिये उनको कोई महत्व नहीं महसूस होगा, सब बेकार लगेगा। इसीलिए गुरु महाराज पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी, बहनों को मना करते थे कि वह हृदय चक्र पर अभ्यास न करें। वह मस्तक में आज्ञा-चक्र पर अभ्यास करें।

आन्तरिक अभ्यास के लिये जो यह बात कही जा रही है वह पुरुषों के लिये ही है। पुरुष कुछ दिनों हृदय पर अभ्यास करने के बाद ही आगे चलकर गुरु कह देते हैं कि अब आज्ञा चक्र पर, मस्तक के मध्य में ध्यान केन्द्रित करो। प्रारम्भ में दो-चार मिनट हृदय पर ध्यान करके आज्ञा चक्र पर ध्यान करो। दोनों स्थानों (केन्द्रों) पर अभ्यासी को दुनियाँ से बेहोश रहना चाहिये। चारों ओर से खिंचा हुआ ध्यान जब स्थिर होने लगेगा तो इसको सुरति योग कहते हैं।

इस साधना में भीतर में धसना होता है। जितना अधिक सुरति भीतर में धँसेगी आप उतना अधिक आत्मा के समीप होते चले जायेंगे। आपके विचार कम होते चले जायेंगे। धीरे-धीरे आप बुद्धि के स्थान पर आयेंगे, फिर आनन्द के स्थान पर आयेंगे। अंततः आपका ध्यान आत्मा में विलय हो जायेगा।

कबीर साहब कहते हैं कि-

"मेरा मुझमें कुछ नहीं , जो कुछ है सो तोर ,

तेरा तुझको सोंपते क्या लागत है मोर "।

यही गीता का उपदेश है। मेरा कुछ भी नहीं। जिस शरीर के साथ मेरा सम्बन्ध है , वह शरीर भी तो मेरा नहीं। धन दौलत भी मेरी नहीं। विचार भी मेरे नहीं। हम यह जानते भी हैं कि हमारे साथ कुछ भी नहीं जायेगा। तब भी हम यहीं समझ ते हैं कि संसार में जो कुछ भी है सभी हमारा है। अज्ञान के कारण हम मोहग्रस्त हो रहे हैं।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

ईश्वर प्राप्ति के साधन

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ईश्वर प्राप्ती के साधन हैं - विवेक, वैराग्य, षट-सम्पत्ति और मुमुक्षुता। पहले इन्द्रियों को विषयों से हटाओ, मन को वासनाओं से शुद्ध करो, बुद्धि तम और रज से निकल कर सत पर आ जाय और मन शान्त हो जाय ,तभी आत्मा का प्रकाश दीखेगा। बुद्धि जब तक निर्मल होकर आत्मा की तरफ़ नहीं पलटेगी, तब तक खुला ज्ञान नहीं मिलेगा। और बिना सत ज्ञान के न तो आत्मा का अनुभव होगा, न प्रेम जागेगा और न परमात्मा मिलेगा। परमार्थ कमाने के लिये तन, मन, धन सब कुछ लगाते रहें और यह देखते रहें कि मन उनमें अटकने न पावे। हर समय अपनी निरख -परख करते रहो। मन का घाट जब तक न बदलेगा, परमार्थी चाल दुरुस्ती से नहीं बनेगी। गढ़त के लिए मौज के साथ मुआफ़िक़त करो। जो भी दुःख- तक़लीफ़ आवे उन्हें धीरज के साथ, उत्साह और उमंग के साथ बर्दाशत करो। तभी बन्धन ढ़ीला होगा। मालिक की दया की यही पहिचान है कि उल्टी -सुल्टी हालतें आवें, और इनके आने पर मालिक का शुक्रगुज़ार हों। कभी टालने की कोशिश मत करो। अगर बर्दाश्त के बाहर जान पड़े तो उसके सामने रोओ, गिड़गिड़ाओ और बर्दाश्त करने की शक्ति माँगो। उसके हर काम हमारी भलाई के लिए होते हैं। वह वाक़ई बड़ा दयालु है। निराश न हो। दिल में चाह और दर्द पैदा करो। वह कब तुमसे दूर है ? वह तो हर समय तुम्हें पुकार रहा है। ज़रा एक बार उसकी तरफ़ मुख़ातिब होकर तो देखो। कर्म, भाग्य, प्रारब्ध सब फँसाने वाले हैं और फुज़्ला (विष्टा) हैं।

साधना में सफलता के लिए मन को साधना आवश्यक है - इसके लिए क्या करें ?

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ . करतारसिंह जी महाराज)

सारांश यह है कि परमार्थी को यथाशक्ति कम बोलने - अर्थात अधिक से अधिक मौन रहने, कम खाने - यानी कि इतना खाने कि शारीरिक स्वास्थ्य बना रहे, पर आलस्य न बढे, कम सोने - जिससे थकान मिटे किन्तु प्रमाद न बढे, का अभ्यास करना चाहिए। साथ ही साथ, धार्मिक पुस्तकों आदि का अध्ययन, मनन करने का अभ्यास करना भी आवश्यक है। और महापुरुषों के आदर्श जीवन से, उनके सद्गुणों को अपनाने से मन सधेगा और साधना में भी प्रगति होगी। साधना की सिद्धि के लिए, इसमें सफलता प्राप्ति के लिए मन को साधना ही होगा।

जो इस तरह पूरी शरण लेगा उसका एक ही जन्म में, इसी जन्म में, उद्धार मुमकिन है। जन्म जिसकी शरण में कमी है उसे अपनी कमाई के अनुसार एक या अनेक लेने पड़ेंगे। मगर शरण लेने में इस बात का जरा भी ख़्याल न रखे कि कितने जन्म लेने पड़ेंगे। चरणों को दृढ़ करके पकड़े यानी नतीज़े पर ध्यान न रखे। मालिक की मर्ज़ी, जब जी चाहे पास बुला ले। चाहे इस जन्म में और चाहे किसी अगले जन्म में। अपने को पूरी तरह पेश करके ढ़ीला छोड़ दे उसकी शरण में।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्री कृष्णलाल जी महाराज)

आप जो अभ्यास कर रहे हैं क्या वह आपसे ठीक बन रहा है ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

कभीक्या .अभ्यासी के मन में यह उत्कण्ठा होती है कि जो अभ्यास मैं कर रहा हूँ कभी-ठीक बन रहा है या वह गलत है-वह मुझ से ठीक। यहाँ दो बातें हैं । अभ्यासियों की दो किस्में बताई जा चुकी हैं । एक तो ऐसे अभ्यासी होते हैं जिनमें प्रेम अंग उभरा हुआ होता है । दूसरे वे जिनमें विवेक और वैराग का अंग सबल होता है । प्रेमी अभ्यासी के मन में बहुधा ऐसे प्रश्न उठते ही नहीं, वह अपने गुरुदेव के प्रेम में मग्न रहता है और उसकी सभी चेष्टायें प्रायः उसी प्रेम को उत्तरोत्तर बढ़ाने के हेतु होती हैं । इस प्रकार की उत्कण्ठा यदि यदाहे " - कदा उसके मन में उठती हैं तो वह समर्पण का आसरा लेता है और कहता है- सतगुरु। मैं नहीं जानता कि मेरा अभ्यास ठीक से हो रहा है या नहीं । मैं तो आपकी शरणागत हूँ, भला हूँ या बुरा हूँ, हूँ तो आपका, अभ्यास ठीक से होता है या नहीं, यह मैं क्या जानूँ ? मैं तो आपका दामन पकड़े हूँ, मेरी लाज अब आप ही के हाथ है । इससे अधिक और मैं कुछ नहीं जानता । को मिटटी में मिलाता (अहं) इस प्रकार वह अपनी ख़ुदी " चलता है और अभ्यास ठीक है या नहीं, इन बखेड़ों में नहीं पड़ता ।

ऐसी उत्कण्ठा बहुधा उन अभ्यासियों को परेशान करती है जिनका विवेक और वैराग अंग प्रबल होता है । ऐसे लोगों के लिए अपनी उत्कण्ठा की चर्चा अपने गुरुदेव से करनी चाहिये और अपना हाल निवेदन कर देना चाहिये । वे ही सही सही बतायेंगे कि अभ्यास ठीक चल रहा है या नहीं । मोटी सी पहचान यह है कि भजन या ध्यान के समय दुनियाँ से गाफ़िल हो जाय और अंतर में होश रहे तो यह निशानी इस बात की है की है कि अभ्यास ठीक से हो

रहा है । यदि नींद की सी हालत हो जाय, भीतर और बाहर दोनों तरफ़ का होश न रहे तो समझ लेना चाहिये कि यह नींद की अवस्था है । कोईकोई तो ऐसी अवस्था- में खुर्राटे लेने लगते हैं । ऐसी सूरत में अभ्यासी को चाहिये कि जब शरीर में सुस्ती हो तो अभ्यास करने न बैठे और यदि बैठने पर नींद की सी हालत इस तरह की हो जाय कि अन्दर और बाहर दोनों का होश न रहे तो आँखें खोल दे और मुँह धोकर थोड़ा सा टहले जिस से सुस्ती दूर हो जाय । तब अभ्यास करे । यदि बारबार यही इलाज करने पर भी ग़फ़लत आ - जाय तो उस समय अभ्यास को स्थगित करके किसी और समय अभ्यास करना चाहिये । यदि कोई सत्संगी पास बैठा हो तो उसे मुनासिब है कि जो सत्संगी अभ्यास के समय खुर्राटे ले रहा हो उसे धीरे से हाथ छूकर जगा दे ।

मैंने देखा कि सब एक ही चीज़ है, फ़र्क सिर्फ़ शब्दों का है। मुसलमानों में जहाँ तक शरियत (इन्द्रियों की शुद्धि) है, उसमें फ़र्क है, तरीक़त में फ़र्क है, बुद्धि शुद्ध करने के तरीक़े में फ़र्क है, मगर जहाँ तक हक़ीक़त का सवाल है, वह एक ही है। हमने तो यह देखा कि इख़लाक़ को बनाने (character formation) के लिए किसी एक तरीक़े को ले लो, चाहे वह वेद शास्त्र का हो या कोई और हो। जब हकीक़त पर आ जाओ तो औरों के तरीक़े को देखो. आख़ीर सबका एक सा ही पाओगे।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

गलती करके सीखा और सब पर होती है लेकिन जब कोई विशेष कृपा होती है तो शिष्य पर अपनी शक्ति से कोई न कोई हालत गुज़ार देते हैं. लेकिन यह हालत आरज़ी होती है, क़ायम नहीं रहती क्योंकि अभ्यास और इख़लाक़ की कमी होती है. जब धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ता जाता है और इख़लाक़ बनता जाता है, शिष्य एक न एक दिन गुरु कृपा से उस हालत को पहुँच जाता है. पहली हालत कश्फ़ (गुरु की खेंच शक्ति) की और दूसरी हालत कस्ब (शिष्य का निज अभ्यास) की कहलाती है। इसी को अरूज (चढ़ाव) और नज़ूल (उतार) कहते हैं । पहले चढ़ा, फिर गिरा और फिर चढ़कर वहाँ तक पहुँचा।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

इसी अवस्था की प्राप्ति के लिए ही हमारी प्रार्थना में वाला मन्त्र शामिल " ॐ सहनाववतु " - साथ परमात्मा से विनती की गयी है कि-किया गया है जिसमें गुरु और शिष्य की साथ स-दोनों की साथ◌ाथ रक्षा व पालन हो, दोनों साथसाथ शक्ति प्राप्त करें-, तेजोमयी विद्या पायें और अन्ततः अपनी दुई मिटाकर, स्नेह सूत्र में बंध कर, एक हो जायें एवं परम लय अवस्था को प्राप्त करें।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

हमारी साधना प्रेम साधना है

(परमसन्त महात्मा डॉ. करतार सिंह जी महाराज)

आप कहेंगे कि ये कैसी अनोखी दीक्षा है और ये 'नाम' कैसा है ? ये 'प्रेम' है। शिष्य में और गुरु में वास्तव में कोई अन्तर नहीं होता या किसी प्रकार का विभाजन नहीं होता। प्रेम में द्वैत नहीं होती। हमारी साधना ही प्रेम-साधना है। ये जो कुछ भी हम दीक्षा के समय बतलाते हैं ये एक तकनीकी साधना है, क्योंकि साधारण व्यक्ति को विश्वास नहीं होता जब तक उसको कोई तकनीक न बतलाई जाय। वास्तव में हमारे यहाँ की जो साधना है वो 'प्रेम' की साधना है। 'प्रेम' कहते हैं जहाँ कोई विभाजन न हो, जहाँ एकता ही एकता है, जहाँ शब्द नहीं है। ये शब्दों का प्रयोग कुछ सालों से होने लगा है क्योंकि कुछ लोगों की तृप्ति नहीं होती जब तक कुछ बोलें नही। ये साधन शब्दों का नहीं है। जहाँ शब्द खत्म हो जाते हैं वहाँ से साधना शुरू होती है। इसीलिए मौन साधना पर बैठते हैं। परन्तु हम 10-15 मिनिटों के बाद ऊब जाते हैं, फिर कभी भजन पढ़ते हैं, कभी हम बोलते हैं, कभी पुस्तकें पढ़ते हैं। तो मौन में जो प्रेम साधना करते हैं उसको ग्रहण करने की कोशिश करते हैं। आत्मा की तो कोई साधना नहीं है, उसकी कोई पद्धति नहीं है। किस समय, किस प्रकार ईश्वर की, गुरु की, कृपा हो जाती है, कोई कुछ नहीं कह सकता। वह क्षण भर में होती है। इस क्षण की प्रतीक्षा ही हमारी साधना है। उस क्षण की प्रतीक्षा का शबरी के जीवन से पता चलता है कि किस प्रकार भगवान आकर कृतार्थ करते हैं, नाम या प्रेम प्रदान करते हैं, अर्थात आत्मिक जीवन प्रदान करते हैं।

आन्तरिक उन्नति के लिए गुरु का सत्संग ज़रूरी है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

आन्तरिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सुरत पर मैल न चढ़ने पाये, उसका दिन-रात निखार होता चले और वह अपने प्रीतम परमात्मा की राह में तेज़ी से बढ़ती चली जाय । इसके लिए ज़रूरी यह है कि सतगुरु का सत्संग ज़ल्दीयदि सतगुरु दूर .ज़ल्दी मिलता रहे-हों, ज़ल्दीज़ल्दी उनके पास न जा सकें-, या उनने शरीर छोड़ दिया हो या अन्य किसी कारण से उनका सत्संग ज़ल्दी न मिल सके तो जो कोई प्रेमी सत्संगी उनसे मिला हुआ हो, साधना कर रहा हो और उनका मंज़ूरेनज़र हो-, अर्थात उस पर उनकी विशेष कृपा और प्यार हो, उसके संग से भी परमपिता परमेश्वर अभ्यासी की सुरत को अपने श्री चरणों में लगावेंगे, अंतर व बाहर का परिचय देकर उसकी प्रीति और प्रतीति बढ़ायेंगे जिनसे उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जायेगा कि मालिक ने उसे अपनाया है और दिन प्रतिदिन उसकी सुरत का निखार करते जा रहे हैं । ऐसी दशा में उसके लिए यह और भी हितकर होगा कि उस प्रेमी सत्संगी का संग करता । जो आप चल रहा है, वह दूसरों को चलाता जावेगा और एक दिन दोनों रास्ता तय करके मालिक के धाम में पहुँच जायेंगे ।

अभ्यासी को, विशेषकर उस अभ्यासी को जो चाहता है कि उसकी सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाय, यह जान लेना आवश्यक है कि सुरत की धार से यह सारा पिण्ड शरीर चैतन्य है । जैसेज-ैसे सुरत की धार इस पिण्ड शरीर में से सिमट सिमट ऊपर को-चढ़ेगी वैसे ही वैसे यह शरीर उससे ख़ाली होता जायगा । दूसरे शब्दों में यों समझ लीजिये कि जिस सुरत की धार से यह पिण्ड शरीर संचालित है उस धार के ऊपर खिंच जाने से

इसके संचालन पर प्रभाव पड़ेगा । यदि सुरत एकदम ऊपर खिंच जायेगी तो यह कभी शरीर को सहन नहीं होगा और बहुत कुछ सम्भव है कि कुछ शारीरिक नुक़सान हो जाय या शरीर ही छूट जाय । किन्तु यदि धीरेधीरे सुरत का चढ़ाव ऊपर को होगा तो उससे शरीर - का कुछ हर्ज़ नहीं होगा।

यदि हम पूजा करते हैं तो हम से बुरे कर्म क्यों होते हैं ?

(परमसंत डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

हम जानते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ है, वह हमारी सारी चाल-ढ़ाल को देखता है, हमारे व्यवहार को भी देखता है, परन्तु फिर भी हमारे भीतर में ईश्वर के या गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा नहीं है तभी तो हम बुरे काम कर बैठते हैं। ग़लत काम हमसे होते क्यों हैं ? इसलिए कि हमारे भीतर में इस विश्वास का आभास नहीं है कि ईश्वर हमें देख रहा है। यह एक व्यक्ति की हालत नहीं है, बहुतों की,अधिकतम लोगों की यह हालत है। हम ईश्वर का केवल नाम ही लेते हैं। कहते हैं, हाँ साहब, हम तो ईश्वर पूजा करते हैं। वास्तव में ईश्वर पूजा करता कोई नहीं है। यदि हम पूजा करते हैं तो हम से बुरे कर्म क्यों होते हैं।

" हरिधन के भरि लेहु भंडारा "

(परमसन्त महात्मा डॉ . करतारसिंह जी महाराज)

महापुरुषों का (गुरु का) आशीर्वाद लेने के लिए हम उनके चरणों में बैठते हैं। उनके पास बैठकर क्या करें ? " हरिधन के भरि लेहु भंडारा" उनके शरीर से एक प्रकार की तरंगें (vibrations), रश्मियाँ निकलती हैं। जैसे सूरज की किरणें निकलती हैं, इसी प्रकार से महापुरुषों के भीतर से आत्मिक रश्मियाँ आती हैं। वो महापुरुष इसके लिए प्रयास नहीं करते, यह उनकी सहज अवस्था हो जाती है। सिद्ध पुरुष के पास बैठकर क्या मिलेगा ? हरिधन मिलेगा, ईश्वर का प्रेम मिलेगा। हमारी मलिनता दूर होगी। उनके चरणों में बैठ कर हम भी अपनी आत्मा के करीब हो जायेंगे। हमें भी ईश्वर का प्रेम कुछ-कुछ अनुभव होने लगेगा। हम बार-बार उनके पास जाते रहें, ईश्वर के समीप बैठते रहें, तो उनका जो स्वरुप है, वही स्वरुप हमारा भी हो जायेगा। जो सन्त के पास जाता है, सन्त मौन में ही उसे अपना जैसा बना लेते हैं। वहाँ जाकर कुछ माँगना नहीं चाहिए। उनसे लेने की जो वस्तु है वह है हरि धन, ईश्वर प्रेम, प्रभु प्रेम। अपने अवगुणों कि ख़त्म करने के लिए उनसे निवेदन करना चाहिए। कृपा करना तो उनका सहज स्वभाव होता है।

नाम

(परमसन्त महात्मा डॉ . करतारसिंह जी महाराज)

तो 'नाम' केवल राम-राम कहना नहीं है, राम जैसा बनना है। राम के गुणों को अपनाना है। 'नाम' का मतलब है 'सुमिरन', 'स्मृति' प्रभु के रूप को अपने भीतर में बसाना है। प्रभु के गुणों को अपने भीतर में बसाना ही 'राम' बन जाना है। तन में राम, मन में राम, रोम-रोम में राम ही राम। ऐसी स्थिति आ जनि चाहिए। " ज्यों जल में जल जाय खटाना, त्यों ज्योति संग ज्योति समाना। " यानी हम इतने पवित्र हो जायें कि हमारी आत्मा परमात्मा में लय हो जावे जैसे जल में जल मिल कर एक हो जाता है। एक स्थिति और है इससे आगे। उसे सूफ़ी 'फ़ना' कहते हैं, हमारे यहाँ उसे 'लय' कहते हैं। आगे एक और चरण है 'बक़ा' या ' पुनर्जन्म' यानी प्रभु रूप होकर संसार का उद्धार करना। भटक रहे प्राणियों की सेवा करना। यह संतों का रूप है। यह नहीं कि पत्थर बन जाना या पानी में मिलकर पानी हो जाना, अपने आपको ख़त्म कर लेना। आपका पूर्ण उद्धार तब तक नहीं होगा जब तक आप संसार की सेवा नहीं करेंगे। अरविन्द जी कहते हैं कि व्यक्तिगत मोक्ष भी स्वार्थ है। तो सबका लक्ष्य यही है और हमारे लिए भी यही लक्ष्य है कि हम अपने व्यवहार के द्वारा, विचारों के द्वारा, सब की सेवा करें। निष्काम भाव से सेवा करें। यही गीता हमें सिखाती है।

अभ्यासी को गुरु का मुरीद बन जाना चाहिए

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सन्तमत में इस बात पर बल दिया जाता है कि दुनियाँ की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोग कर, उनसे उपराम होकर, उन्हें छोड़ते चलो। इससे दुनियाँ भी निभ जायगी और दीन नता चलेगाभी ब। जिस चाल में दीन और दुनियाँ दोनों का ही नुक़सान हो , ऐसी चाल सन्तजन नहीं चलाते। धीरे चलाकर धुर मन्जिल पर पहुँचा देते हैं न -वे अभ्यासी को धीरे कि रास्ते में अटकाकर छोड़ देते हैं। अतः अभ्य ासियों और सत्संगियों को चाहिये कि ऐसी ज़ल्दी न करें जिसमें उनका काम बिगड़े। कभी रस और -जैसे सन्त सतगुरु कभी- जैसे कभी विरह और बेकली देकर चलावें उसी तरह चलता जाय-आनन्द तथा कभी। अभ्यासी की अपेक्षा सतगुरु ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि अभ्यासी की भलाई किस में है। वो जो उचित और हितकर समझेंगे सो ही करेंगे। सन्तों ने कहा है कि अभ्यासी को इसीलिए सूफ़ी मुरीद बन जाना चाहिये। मुर्दा - मुरीद का अर्थ है। जैसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है , उसी तरह अभ्यासी को चाहिये कि अपने आपको सतगुरु के प्रति पूर्ण समर्पण कर दे। इसका मतलब यह नहीं कि उनसेअपनी हालत भी न कहे। तब -चित हो तबजब उ-जब अपनी उन्नति के लिए सतगुरु से निवेदन कर दे, परन्तु निराश होकर अभ्यास में सुस्ती और ढ़ील न आने दे, सतगुरु और परमपिता परमेश्वर के प्रति अपने प्रेम को रूखाफ़ीका न होने - दे। सतगुरु की संगति से उस प्रे म का तीख़ापन तेज़ करता जाय। है यही प्रेम तो वह बूटी जिसे पिये बिना पूर्ण समर्पण सम्भव नहीं, जिसके बिना मुरीद नहीं बनता (मुर्दा)।

जो कुछ यत्न करना हो इसी जन्म में कर लो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

अगले जन्म की बात क्यों सोचते हो ? जो कुछ करना है वह इसी जन्म में कर लो। आगे न जाने कौन सा जन्म हो। अगले जन्म में ख़वास (आदत, स्वभाव) के मुताबिक जानवर और पत्थर भी बन सकते हो और देवताओं की योनि की भी प्राप्ति हो सकती है। यह सब भोग योनियाँ हैं। कर्म केवल मनुष्य चोले ही में बन सकता है, यानी मनुष्य चोला ही एक ऐसा चोला है जिसमें परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है और यह चोला बार-बार नहीं मिल सकता। जो कुछ यत्न करना हो, इसी जन्म में करो। सब बातों से ध्यान हटाकर ऐसी बात में लगाओ जिससे परमार्थ का रास्ता खुले। एक बार रास्ते पर पड़ जाओगे तो वह कमाई बेकार नहीं जायेगी। आवरण पड़ सकते हैं लेकिन वे आवरण हटाये जा सकते हैं। हीरा मिटटी में दब जाये तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता। मिटटी हटा दो, फिर हीरे की चमक वैसी-की वैसी रहेगी। दुनियाँ की चाहों को ख़त्म कर दो। यहाँ की चाहों को चाहना व्यर्थ है और इस दुनियाँ से परे की चीज़ को चाहना परमार्थ है ।

परमार्थ के मामले में किसी की परवाह मत करो।

इस दुनियाँ में अभी तक हमें कौन सा सुख मिला है जो आगे देगी। जब जाने का वक़्त आयेगा, तो क्या सुख से जाओगे ? इसलिए इस ज़िन्दगी में इसे मन से छोड़ दो।
(ब्रह्मलीन परमसंत महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

तुम्हारी परमार्थ की कमाई ही तुम्हारे साथ जायेगी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जब मनुष्य दुनियाँ की चीज़ों को आहिस्ता-आहिस्ता भोग कर देख लेता है कि इनमें असली सुख नहीं है, यह दुनियाँ रहने की जगह नहीं है। तब वह तम से हट कर सत की तरफ़ मुड़ता है। तुम भी सत पर आ जाओ। उस मालिक पर विश्वास करो, उसकी शक्ति के साथ एवं इस प्रकृति माता के साथ सहयोग करो। घर के लोगों को, जिनको खिलाने-पिलाने, पढ़ाने और दुनियाँ के फ़रायज़ (कर्तव्य) पूरा करने का काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे उसकी सेवा समझ कर करो। उनके ऊपर हुकूमत मत करो। हुकूमत तो सिर्फ़ मालिक की होती है, और मालिक सिर्फ़ एक ही है और वह है परमात्मा। तुम्हें तो यहाँ सेवा के लिए भेजा गया है, तुम अपने को मालिक कैसे समझते हो ? अपने घरवालों की ख़्वाहिशात की मातहती में मत पड़ो। मगर उन्हें गुनाह करने से रोको। कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा, कोई तुम्हारे मतलब का नहीं हो सकता। किसी को बिना माँगे अपनी सलाह मत दो। अगर कोई तुंम्हारी सलाह माँगे तो वक्त और मौके के मुताबिक़ जो ठीक समझो, उसे बता दो। ऊपर- ऊपर सबसे ताल्लुक़ रखो मगर अन्दर से अपने को सबसे अलहदा रखो। इस तरह तुम अपने को बनाते चलोगे तो उसका असर वातावरण पर पड़ेगा। अपने बच्चों और जिन औरों के सम्पर्क में आओगे, उन पर असर पड़ेगा। सन्त कि छह पुश्तें (पीढ़ियाँ) अपने आप तर जाती है। दुनियाँ में जितने उनके निकट सम्बन्धी हैं, उनका उसे ख़्याल आता है। ऊपर के वंश में वह बाप और दादा तक सोचता है और नीचे के वंश में बेटे और पोते तक। ख़ुद वह परमात्मा में लीन रहता है, इसलिए जिसका भी वह ख़्याल करता है, उस पर असर ज़रूर

पड़ता है। शिष्य अगर गुरु का ध्यान करे तो जिस स्थान पर गुरु की बैठक उस समय होती है, वहाँ तक फ़ायदा शिष्य को आप से आप हो जाता है।

सिकन्दर दुनियाँ का बादशाह था। मरते वक्त उसने वसीयत की कि मरने के वक़्त मेरे हाथ क़फ़न के बाहर निकाल देना जिससे दुनियाँ देखे कि सिकन्दर महान जिसके पास सारी दुनियाँ की बादशाहत, धन-दौलत और सारे साज़ो-सामान थे, इस दुनियाँ से ख़ाली हाथ जा रहा है। जो कुछ दुनियाँ का है, दुनियाँ में ही रह जायेगा। तुम्हारे ऐमाल (शुभाशुभ कर्म), तुम्हारी परमार्थ की कमाई ही तुम्हारे साथ जायेगी। तुम्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है, फिर भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो ? फिर क्यों तुम उसमें फँसते हो ?

बाज़े लोगों को यह एतराज़ है कि दूसरे मज़हबों की किताबें हमारे यहाँ क्यों पढ़ी जाती हैं या पढ़ने को बताई जाती हैं। हमारे लिए तो जो रास्ता हमारे गुरुदेव ने दिखाया वही सही है। उसी को हम ठीक मानते हैं। लालाजी के दिल में अपने गुरुदेव के लिए इतना प्रेम था कि वे उनके नाम से रोने लगते थे।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

दुनियाँ के सब काम परमात्मा के काम समझ कर करो - भाव बदलो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

रहना तो इसी दुनियाँ में पड़ेगा। दुनियाँ नहीं छोड़ सकते। पहाड़ों पर जाने से, घर बार छोड़ देने से, दुनियाँ नहीं छूटती, दुनियाँ की कुछ चीज़ें भले ही छूट जायें। मन से दुनियाँ को छोड़ो। सब काम इसी तरह होते रहेंगे जैसे होते हैं, लेकिन सिर्फ़ भाव बदलना पड़ेगा। हर काम को परमात्मा का काम समझकर उसकी सेवा करो और इस भाव को स्थायी बनालो। लगातार यही ख़्याल रहे की जो काम तुम कर रहे हो वह ईश्वर की सेवा है। यह दुनियाँ ईश्वर की है, सभी ईश्वर के हैं। जो काम हम कर रहे हैं, ईश्वर की सेवा कर रहे हैं। मन समुन्द्र की तरह है, इसमें अथाह दुनियाँ भरी पड़ी है। धीरे-धीरे उसमें परमात्मा का भाव भरो, उसका नाम भरो। जैसे-जैसे वह भरता जायेगा, दुनियाँ उसमें से बाहर निकलती जायेगी। अगर मन में न भरे तो उसमें ज़बरदस्ती ठूँस-ठूँस कर भरो। प्यार तो आप अब भी करते हैं - स्त्री को स्त्री की तरह, पुत्र को पुत्र की तरह और दूसरों को अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक़। लेकिन इसका भाव बदलो। भाव बदलने पर प्यार तो वही रहेगा, लेकिन फ़र्क़ इतना हो जायगा की तब तुम सबको ईश्वर का समझ कर प्यार करोगे। अभी अपना समझ कर प्यार करते हो, इसमें बन्धन होता है, उसमें मोक्ष होती है। अपना अहं (ego) ख़त्म करके ईश्वर के अहं (divine ego) से काम लो। आनन्द ही आनन्द रहेगा। दुनियाँ ख़ुशी का घर नज़र आयेगी।

पहले मन की गढ़त और सफ़ाई आवश्यक है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

मनुष्य का मन जन्मजन्मान्तर से अपनी असल मातृ भूमि को भूला हुआ है और इस - पिण्ड देश की माया और उसके पदार्थों में लिपट कर उलटी चाल चल रहा है, यानी बजाय ऊपर को चलने के नीचे की तरफ़ चल रहा है । इसकी गढ़त और सफ़ाई होनी चाहिये । जब तक सफ़ाई नहीं होती यानी जब तक यह तम से हट कर रज पर और रज से हटकर सत पर नहीं आ जाता, तब तक गुरुजन अभ्यासी के आन्तरिक चक्षु नहीं खोलते । उसकी सुरत को सामान्य रूप से चढ़ने में सहायता अवश्य करते रहते है । जैसेजैसे मन की - सफ़ाई होती जाती है और सुरत ऊपर चढ़ने लगती है, वैसे वैसे रास्ता साफ़ होता जाता है- । जब मन की पूरी तरह सफ़ाई और गढ़त हो जाती है, अभ्यासी को ऊँचे चक्रों के आनन्द को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, तब सतगुरु दया करके अंशतः आन्तरिक चक्षु खोलते हैं और शक्ति प्रदान करते हैं कि उन चक्षुओं से अन्दर का जलवा देखे और उसे देखकर श्रष्टि कर्ता सर्वाधार मालिक के प्रति प्रेम बढ़े- । जिस समय भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर उसके आन्तरिक चक्षु खोले और उसे विराट रूप के दर्शन कराये, वे दर्शन उससे बर्दाश्त नहीं हुए और उसने भगवान से प्रार्थना की कि उसे (सहन) पुनः पूर्व स्थिति में कर दें। बात यह थी कि अर्जुन के मन की गढ़त और सफ़ाई नहीं हुई थी, इसीलिए उसे वे दर्शन सहन नहीं हुए । वह अपने भ्रमों और शंकाओं का निवारण कर रहा था और भगवान उसे उपदेश दे रहे थे । किन्तु अभी मन साफ़ और शुद्ध नहीं हो पाया था । उसके अत्यन्त आग्रह करने पर भगवान ने उस पर यह कृपा की थी । इसी प्रकार सतगुरु तो अपनी ओर से चाहते हैं कि शिष्य को सब कुछ दे दें, किन्तु शिष्य के पात्र में तो

जगह ही नहीं होती, भरें किसमें ? मन शुद्ध होना ही पात्र में जगह होना है । ज्योंज्यों पात्र - बनता जायगा, सतगुरु की कृपा से लबालब होता जायगा । अंतर के चक्र खुलने लगेंगे, उनका गहरा आनन्द अनुभव होने लगेगा और परमपिता परमेश्वर की सच्ची महिमा को समझने योग्य हो जायगा ।

जब तक अभ्यासी की ऐसी स्थिति न हो जाय जैसी कि ऊपर बताई गयी है, तब तक धैर्य के साथ, पूर्ण विश्वास, प्रीति और प्रतीति के साथ, अपना अभ्यास किये जाय और धीरे - धीरे अपनी आन्तरिक उन्नति का आभास करता जाय। इसकी पहिचान यह है कि उसके मन में दिनपरमपिता परमेश्वर क दिन सतगुरु और-प्रति-े चरणों में प्रीति और प्रतीति गहरी होने लगेगी । दुनियाँ से उपरामता और सतगुरु के जल्दीजल्दी दर्शन करने की - लालसा बढ़ती जायगी।

मैंने देखा कि सब एक ही चीज़ है, फ़र्क सिर्फ़ शब्दों का है। मुसलमानों में जहाँ तक शरियत (इन्द्रियों की शुद्धि) है, उसमें फ़र्क है, तरीक़त में फ़र्क है, बुद्धि शुद्ध करने के तरीक़े में फ़र्क है, मगर जहाँ तक हक़ीक़त का सवाल है, वह एक ही है। हमने तो यह देखा कि इख़लाक़ को बनाने (character formation) के लिए किसी एक तरीक़े को ले लो, चाहे वह वेद शास्त्र का हो या कोई और हो। जब हकीक़त पर आ जाओ तो औरों के तरीक़े को देखो. आख़ीर सबका एक सा ही पाओगे। (ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

पाप क्या और पुण्य क्या ?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

गंगा का जल कितना पवित्र है। कभी सड़ता नहीं है। मगर किसी तरह अगर यह दूर जा पड़े और बीच में एक मेड़ सी बन जाये तो उसे गड्ढे का पानी कहते हैं, वह गंगा से अलग हो जाता है, सड़ने लगता है। तुम भी गंगा के पानी हो लेकिन गड्ढे में पड़े सड़ रहे हो क्योंकि मेड़ बीच में बन गयी है। तुम उसी सत्पुरुष दयाल का अंश हो जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, लेकिन मन की वजह से, मेरे-तेरेपन की वजह से तुम्हारे और उसके बीच में एक मेड़ बन गयी है। उसको तोड़ दो, तुम और वह एक हो। यह बिना गुरु की शरण लिये, बिना उसके वाक्यों पर अमल किये और बिना सत्संग के नहीं होगा। जो चीज़ ईश्वर से अलहदगी (दूर) करे, जो मालिक से दूर ले जाये, उसे त्याग दो। कोई भी कर्म जो मालिक से दूर ले जाये, 'पाप' है, जो कर्म मालिक से नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो वही 'पुण्य' है।

"स्वयं को शुद्ध करने के लिए हमें अपनी उन सभी आदतों और भावनाओं को सुधारना होगा जो सद्चरित्र एवं संस्कृति के विरुद्ध हैं, साथ ही सभी प्रवृत्तियों को भी परिष्कृत करना होगा ताकि हम स्वयं की परिपूर्णता तक पहुँच सकें"।

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (लाला जी))

पूजा में मन न लगने के कारण और उपाय

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जिसको देखो वह यही शिकायत करता है कि उसका पूजा में मन नहीं लगता। मन न लगने की वजह यह है कि तुमने दुनियाँ के काम और उसकी चीज़ों को मुख्य समझ रखा है और पूजा और परमार्थ को गौण। मन तो एक ही है और वह हर समय दुनियाँ की चीज़ों में फँसा रहता है, उन्हीं में आनन्द तलाश करता है, और दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रखा है, तो मन दुनियाँ में से निकले कैसे ? परमार्थ का ख़्याल तो अब शुरू हुआ है, इसमें रस और आनन्द तो तब आयेगा जब इसमें घुसोगे और अपने मन को दुनियाँ की तरफ़ से मोड़ कर उधर लगाओगे।

यह सोच लेना कि गुरु-कृपा होगी तो सब ठीक हो जायेगा कमज़ोरी है। गुरु-कृपा तो शुरू-शुरू में एक तरह से सम्मोहन का काम करता है और वह अस्थायी तौर पर आपकी सुरत को ऊपर खैंच लेती है जिससे थोड़ी बहुत देर के लिये ऊपर के घाट का रस मिलने लगता है और मन उसमें लगने लगता है। लेकिन यह अवस्था सदा नहीं रह सकती। जब तक स्वयँ कोशिश नहीं करोगे और अपनी सुरत को खैंच कर उसकी स्थिति ऊपर के घाटों में नहीं करोगे तब तक मन को ऊपर के घाटों का आनन्द कैसे मिलेगा, और वह कैसे पूजा में लगेगा ? मुद्दत से यह मन दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रहा है, जन्म-जन्मान्तर से वह दुनियाँ में फँसा हुआ है और दुनियाँ में ही रम रहा है। आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ की क़दर को कम करो और परमार्थ को मुक़द्दम (मुख्य) रख कर उसकी तरफ़ झुको।

भगवान से सिवाय उनके चरणों में प्रीति के और कुछ न माँगे

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

अभ्यासी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भगवान से सिवाय उनके चरणों में प्रीति के और कुछ न माँगे । हाँ, बहुत मज़बूरी में रोटी, कपड़े या दुनियाँ के किसी ज़रूरी काम के लिए निवेदन कर देने में कुछ हर्ज़ नहीं है । इसके अलावा दुनियाँ की और और बातों के लिए माँग करना अनुचित है और भक्ति के नियमों के प्रतिकूल है । कभीकभी ऐसा होता है - चाहता है कि अमुक काम पूरा होने के कि मन मानता ही नहीं और बहुत रोकने पर भी यही लिये अवश्य निवेदन करें। यह ख़्याल पूजा में भी विघ्न और रुकावट पैदा करता है । इसे दूर करने के लिये संतों ने बताया है कि जब सतगुरु के सामने बैठें और पूजा समाप्त हो जाय तो धीरे से निवेदन कर दें और यह न चाहें कि वे उस इच्छा को अवश्य पूरा कर दें । उनकी मौज पर छोड़ दें । ऐसा अक्सर देखा गया है कि जो सच्चा प्रेमी अभ्यासी है उसके प्रेमपूर्ण हठ या आग्रह को सतगुर-ु यदि उचित समझते हैं और उसका फल उसके परमार्थी हित में होता है, तो पूरा कर देते हैं । इसलिए यह नहीं सोचना चाहिये कि माँगना बिलकुल ही मना है किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि यदि माँग पूरी न हो या सत्संगी की इच्छानुसार कार्य पूरा न हो तो सतगुरु से विमुख न हो जाय । जो कुछ उनकी मौज़ से हो उसी में कुछ भेद और अपना भला समझ कर धैर्य और सन्तोष के साथ उसे अपने सर आँखों पर रखे ।

ध्यान के समय कभीकभी कोई चिन्ता या तकलीफ़ ऐसी सामने आती है कि पूजा में मन - नहीं लगने देती। इसके लिए यह करना चाहिए कि पूजा प्रारम्भ करने से पहले ख़्याली

तौर पर उस चिन्ता या तकलीफ़ को सतगुरु से निवेदन कर दें और यह ख़्याल करके उधर से निश्चिन्त हो जाय कि मैंने अपनी ओर से निवेदन कर दिया है और चूँकि मैं तो उनका हूँ, उन्हीं के आश्रित हूँ, अतः अब वे जानें । ऐसा करने से उस चिन्ता या तकलीफ़ का भार मन से हल्का हो जायगा । फिर अपने मन और सुरत को समेट कर जितना बन सके सतगुरु स्वरूप या शब्द या दोनों में लगा दें । ऐसा करने से पूजा में मन भी लगता है और तकलीफ़ को सहने की ताक़त भी प्राप्त होती है ।

बच्चा है । माँ की गोद में जाता है अचिन्त होकर , निर्भय होकर । तुम बच्चे की तरह रहो । माँ के रहते हुए क्या बच्चा भय खाता है ? क्या उसको भविष्य का कोई भय या चिन्ता होती है ? वह माँ की गोद में आनन्द से रहता है । तुम भी अपने आप को मेरे में लय कर दो । मेरे में लय क्या करोगे ? यह जो पाँच तत्व और तीन तत्व हैं मेरे में लीन कैसे होंगे ? लय केवल आत्मा हो सकती है परमात्मा में । भगवान समझा रहे हैं कि ये पंचतत्व और तीन गुण हैं ये नश्वर हैं , अस्थाई हैं । इनको छोड़ो । आसक्ति का त्याग करो , सत्यता की अनुभूति करो । आत्मा को परमात्मा में लय करके तुम सदा के लिए अमर हो जाओ , मोह रहित हो जाओ ।

(परम् सन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज(

मन का शुद्ध और सात्विकी होना आवश्यक है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

अधिकतर लोग मन के स्थान पर हैं और उनकी सुरत मन में फँसी हुई है । यदि मन शुद्ध नहीं हो पाया है, वह अभी सात्विकी नहीं हो पाया है यानी तम से रज और रज से सत पर) तो वह सुरत के साथ चढ़ाई नहीं कर स (नहीं आ पाया हैकेगा । इसको यों समझ लीजिये कि जब तक अभ्यासी का आचरण दुरुस्त नहीं हुआ है तब तक उसके मन की (इख़लाक़) गढ़त नहीं हुई है, वह सात्विकी नहीं हुआ है, ऐसी सूरत में सुरत को एकदम ऊपर चढ़ाने से नुकसान हो जायगा । यदि सुरत को एकदम ऊपर चढ़ा दिया जाय और सतगुरु अपनी कृपा ऐसी भी मेहर करें कि शारीरिक नुकसान भी न हो तो भी यह बात अभ्यासी के हित में नहीं है । ऐसे अभ्यासी का मन एकाँगी यानी एक तरफ़ा हो जायगा- । उसका मन दुनियाँ के कारोबार में नहीं लगेगा । परमार्थ भी दुरुस्ती से नहीं बनेगा, एक प्रकार की बेहोशी की सी हालत हो जायेगी और आगे का रास्ता बन्द हो जायगा । फिर वह मनुष्य न स्वार्थ का रहेगा न परमार्थ का । न दुनियाँ भोगी और न परमार्थ बना । किसी ने कहा है -' न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के रहे न उधर के रहे ' ।

जब तक तरीक़ा मालूम करके अभ्यास नहीं करेगा उस घर तक पहुँचना नहीं हो सकता। विद्या पढ़ लेने और वाद-विवाद करने से मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज

मन को अन्तर्मुखी बनाना

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

संतों ने कहा है कि जो अभ्यासी तेज़ी से परमार्थ पथ पर बढ़ना चाहते हैं उन्हें यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि संसार के भोगों की चाह और तरंगें कम उठावें और उनमें उतना ही व्यवहार करें जितना आवश्यक है । यदि इन्द्रियों के भोग में आवश्यकता से अधिक व्यवहार करेंगे तो भजन में रस कम आवेगा । इसका एक उपाय संतों ने बताया है कि सत्संग करें, संतों की वाणी का समझपाठ करते रहें जिनमें चेतावनी समझ कर-, वैराग्य, भक्ति और ईश्वर प्रेम हो । जबजब मन बेफ़ायदा और फ़िज़ूल तरेंगे उठावे तो उन्हें भरसक - रोकें और दूर करें तथा उनके लिए मन ही मन लज्जित हों, पछतावें और प्रार्थना करें । धीरेधीरे मन की हालत बदल-ती जावेगी ।

इस काम में न तो जल्दी हो सकती है और न जल्दी करना मुनासिब ही है, क्योंकि यह मन युगयुगान्तर और अनेकों जन्मों से भूला हुआ है-, भ्रम में पड़ा है और आरम्भ से ही इसका झुकाव संसार और इसके भोग विलासों की तरफ़ हो रहा है । यह बहिर्मुखी है । अभ्यास और गुरु कृपा से इसका स्वभाव बदलेगा और तब यह अन्तर्मुखी बनेगा । भगवान की दया तो हो ही रही है लेकिन वह भी धीरेधीरे अपना काम करेगी क्योंकि एक दम हालत - बदलने में पूरा और स्थायी लाभ नहीं होगा ।

संतमत में आने पर अभ्यासी को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस मत में मन को संसार की ओर से खींच कर प्रभु के चरणों में लगाना होता है । इसलिए जिस तरह यह काम सुगमता पूर्वक हो सके, वही यत्न करना चाहिए । जिस अभ्यास में मन अच्छी तरह

लगे वह काम अधिक करना चाहिए और दिल में यह शौक़ नहीं रखना चाहिए कि मुझे किसी प्रकार का प्रकाश या चमत्कार दिखाई दे या कोई सिद्धि या शक्ति प्राप्त हो जाय । यदि ऐसी आशा मन में लगाई जायेगी तो अभ्यास में कभी निर्मल रस नहीं आवेगा । इसलिए यह उचित है कि भजन ओर ध्यान करते समय अपने मन को उसी अभ्यास में लगावे जो सतगुरु ने बताया हो । चाहे प्रकाश या गुरु स्वरुप दिखाई दे या न दे, अपनी सुरत)attention को उसी अभ्यास में लगाए रखे जो सतगुरु ने बताया हो (। मन में संसार की कोई भी गुनावन न उठावे । ऐसा करने से चित्त एकाग्र होने लगेगा । संतों ने इसी को निर्मल रस कहा है । यदि प्रभु की मौज से कोई प्रकाश दिखाई देता है या शब्द सुनाई देता है या आन्तरिक परिचय मिलता है तो उसको निहारे और मालिक को धन्यवाद दे परन्तु अपना मन उसमें न बाँधे और न इस बात की इच्छा रखे कि बारबार वही प्रकाश-, शब्द या परिचय देखने या सुनने को मिले । यदि ऐसा करेगा तो तो शब्द और स्वरूप के केन्द्र से ध्यान हट जायगा, मन नीरस हो जायगा, और अभ्यास में जैसा चाहिए वैसा नहीं लगेगा । फिर यह भ्रम होने लगेगा कि हमको तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ, या हमारी उन्नति नहीं होती, या सतगुरु की हम पर दया नहीं है । ऐसी अनेक तरह की भ्रामक बातें मन में पैदा होकर उसे अभ्यास की तरफ़ से ढ़ीला कर देंगी । अतः सावधान रहो और हर हालत में भगवान पर आश्रित रहो, उसकी दया और कृपा के लिए सदा झोली फैलाये रहो । न मालूम कौन सी घड़ी स्वाँति की बूँद चातक की खुली हुई चोंच में गिर जाय ।

दुनियाँ बनती है मन की शक्ति से, परमार्थ मिलता है काल का कर्ज़ा देने से।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

यह दुनियाँ काल की रचना है। यहाँ पर जो क़र्ज़ लिया है वह चुकाना होगा यानी जो कर्म किए हैं, अच्छे या बुरे, उनका एवज़ मिलेगा। मन दुनियाँ में लगा है, आत्मा अपने देश को जाना चाहती है। मन का रुख़ नीचे की तरफ़ है और आत्मा का ऊपर की तरफ़, दोंनों में जद्दोजहद होतीं है। जब मौत आती है, जान हाथ पैरों से खिंच करके ऊपर को सिमटती है। इन्द्रिय और गुदा से जब निकल जाती है तो पेशाब पाख़ाना छूट जाता है। हृदय से निकलने पर दिल की धड़कन बंद हो जाती है, नब्ज़ छूट जाती है। गला घड़घड़ाने लगता है, वहाँ से निकलने पर आँखों की ज्योति जाती रहती है। इसके बाद भोंहों के बीच के हिस्से से ऊपर चढ़ती है वहाँ एक पतली सी नली है जिसे बंकनाल कहते हैं। जब इसमें होकर गुज़रती है तो बड़ी तक़लीफ़ होती है। आत्मा ऊपर को खींचती हैं और मन की जो गाँठ उसके साथ बंधी होती है वह उसमें से नहीं निकल पाती, टुकड़े -टुकड़े हो जाती है। आदमी हाथ पाँव छटपटाता है, कुछ बोल नहीं पाता। इस मुक़ाम पर बहुत अंधकार होता है। अब जो दुनियाँ में फँसे हैं उनको लेने के लिए यमदूत आते हैं और दूसरों को संत। संत जब आते हैं, बात -चीत करते करते जाते हैं, उन्हें तक़लीफ़ नहीं होती। लगता है जैसे सो रहे हों। जिस रास्ते मौत होती है उस रास्ते संत रोज़ गुज़रते हैं, रोज़ मरते- जीते हैं। अभ्यासियों ने अनुभव किया होगा कि जब सुरत ऊपर को चढ़ती है तो जिस्म का नीचे का हिस्सा सुन्न हो जाता है। मतलब यह है कि आत्मा वहाँ से खिंच कर ऊपर चढ़ जाती है। दुनियाँ बनती है मन की शक्ति से, परमार्थ मिलता है काल का कर्ज़ा देने से।

लगन से परमात्मा का, गुरु का, नाम लेने वाला गिरता नहीं है

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

असली आनन्द आत्मा में है। वह जिस चीज़ को छूती है या जिस चीज़ पर उसका अक्स पड़ता है, उसी में आनन्द का भ्रम होने लगता है, जैसे बच्चे को शीशे में अपना ही रूप देखकर किसी दूसरे बच्चे का भ्रम हो जाता है। आनन्द बाहर की चीज़ों में नहीं, तुम्हारे अन्दर है। जब तुम उसे महसूस (अनुभव) करने लगते हो तो तुम्हारी चढ़ाई ऊपर को होने लगती है यानी अन्तर की तरफ़ का रास्ता खुलने लगता है। लेकिन मन की आदत जन्म-जन्मान्तर से नीचे की तरफ़ यानी दुनियाँ की तरफ़ जाने की है। यह जिस्म और इसमें रहने वाला मन ही शैतान है जो हर प्राणी को पथभ्रष्ट करता रहता है, उसे बहकाया करता है, यानी इन्द्रियों में फँसाता रहता है। शैतान किसी इन्सान का नाम नहीं है। दुनियाँ की सारी बुराइयों का नाम ही शैतान है। नतीज़ा यह होता है कि मन नीचे को खींचता है और आत्मा ऊपर को। यह द्वन्द की अवस्था है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहते हैं। आजकल ज़्यादातर अभ्यासियों की हालत यही है। इसमें प्रार्थना करो और गुरु से मदद माँगो। जब तक यह संग्राम समाप्त नहीं होगा, सत पर नहीं आओगे। जब तक इच्छाएँ, ख़्वाहिशें मौजूद हैं, यहीं रहोगे, छुटकारा नहीं होगा और बार-बार नीचे आओगे।

जो सत्संग करते हैं, नित्य अभ्यास करते हैं, उन्होंने रास्ता पकड़ रखा है। वे कभी न कभी सत वृत्ति पर अवश्य आयेंगे। जो परमात्मा को नहीं पूजते हैं, गिरेंगे। चाहे कितना भी बुरा आदमी हो, लगन से परमात्मा का नाम लेने वाला बहता नहीं है। दीन और दुनियाँ दोनों बना लेता है। दुनियाँ में कर्म पूरे कर लेता है और दीन भी मिल जाता है।

जो किसी पेड़ से रस्से के द्वारा बँधा है वह घूमता भले ही रहे परन्तु गिरता नहीं है। गुरु के प्रेम का, परमात्मा के नाम का रस्सा अपनी कमर में बाँध लो। कितने भी भटको किन्तु रास्ते से हटने नहीं पाओगे।

साधक प्रेम को अपनाते हैं. अपने आचार्य से मौहब्बत करते हैं और जिस रास्ते पर वह चलता है, उस पर पूर्ण विश्वास (blind faith) के साथ चलते हैं. उसके वचनों पर बिना किसी शक या सन्देह के यक़ीन लाते हैं। मौहब्बत में क़ुर्बानी होती है, वहाँ अक़्ल का दख़ल नहीं होता।

दूसरे वे साधक हैं जो अपनी बुद्धि द्वारा रास्ते को ख़ूब समझ लेते हैं। किताबों को पढ़ कर, सतगुरु के वचन सुनकर उन पर ख़ूब विचार करते हैं और तब रास्ता अपनाते हैं।

दोनों में ख़ूबियाँ भी हैं और खराबियाँ भी। अगर साधक का प्रेम सच्चा है, और वह अपने गुरु का पूरा आशिक़ (प्रेमी) है और गुरु की मौजूदग़ी में रास्ता चलता है, तो रास्ता ज़ल्दी तय हो जावेगा।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जितनी शक्तियाँ ब्रह्माण्ड में कार्य कर रही हैं उतनी ही शक्तियाँ पिण्ड (मानव शरीर) में भी कार्य कर रही हैं। अन्तर केवल दोनों की मात्रा व गुण में है। ब्रह्माण्ड ओर पारब्रह्म की शक्तियों ओर विभाजन को पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता। जिस तरह सृष्टि तीन भाग और फिर हर एक के छः - छः भाग हैं उसी तरह पिण्ड (मानव शरीर) के तीन भाग और अठारह उप-भाग है। आत्मा का स्थान सबसे ऊँचा है।

----------परम संत डॉ करतार सिंह जी

शिष्य तीन तरह के होते हैं

(ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

शिष्य तीन तरह के होते हैं - (1) जो गुरु की रहनी-सहनी को निगाह में रखते हैं, कोई काम दिखावे का नहीं करते बल्कि गुरु की ज़रूरत का सारा सामान मुहैया (उपलब्ध) करके अलग हो बैठते हैं। उनको बतलाना नहीं पड़ता। वह गुरु के हर ख़्याल को भाँपते हैं और उसी के मुताबिक़ कारबन्द होते हैं। (काम करते हैं)। यह उत्तम शिष्य हैं। (2) वे जिज्ञासु जो ख़ुद read (आभास) नहीं करते बल्कि उनको कहना पड़ता है - कहने के मुताबिक चलते हैं। यह शिष्य मध्यम हैं। (3) वे जिज्ञासु जिनको लाख कहा जाय, सुनते नहीं, बल्कि इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं, निकृष्ट श्रेणी के शिष्य होते हैं।

पहला सबक़ - आत्मा की तरबियत (शुद्धि) कुछ कष्ट सहकर प्राप्त होती है। ऐसी रहनी-सहनी जो हमारे अन्तर की सफ़ाई करती है, और बुरे कर्मों से छुटकारा दिलवाती है, हमें बार-बार ईश्वरोन्मुख करती है। इस तरह अभ्यासी जब गुरु की तरफ़ प्रेम से खिंचता जाता है (आकृष्ट होता जाता है) तो उसे सँसार की तरफ़ से दुःख -तक़लीफें मिलती हैं।

दूसरा सबक़ - गुरु से प्रेम करने से गुरु का प्रेम मिलता है। और गुरु अपनी दयालुता से जिज्ञासु की तरबियत (आन्तरिक उन्नति) करता है। जब अन्तर में कुछ चढ़ाई होने लगती है तो अहंकार होने लगता है, और जब तक ख़ुदी (अहंकार) ख़त्म नहीं हो लेता तब तक दीन (आध्यात्म लाभ) नहीं मिल सकता। दीन बनता है राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ संतोषी) होने से। तीसरा सबक़ - जिज्ञासु को अपनी ख़ुदी (सात्विक अहंकार) उसे सिखाती है। रूह इस ख़ुदी और ग़रूर को मिटा कर उसको दीन बना देती है।

संत मत का आधार ही प्रेम है - मालिक के चरणों में प्रीति पैदा करो

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सब मतों में यह पुकार कर कहा गया है कि परमात्मा के चरणों में सच्ची प्रीति करो । सब साधन इसलिए किये जाते हैं कि परमात्मा के चरणों में प्रेम पैदा हो जाय । संत मत का आधार ही प्रेम है, अतः इस मत में परमार्थ के मामले में मलिक के चरणों में प्रीति और प्रतीति को सर्वप्रथम रक्खा गया है, उसी को मुख्यता दी गयी है । बिना प्रेम के न तो मालिक की शरण प्राप्त हो सकती है और न अभ्यास ठीक से बन सकता है । अतः परमपिता परमेश्वर के प्रति प्रेम पैदा करें, वक़्त के पूरे सतगुरु के चरणों में प्रेम और प्रतीति को पैदा करें और अपने आपको उनके आश्रित कर दें । संसार की फ़िज़ूल की बातों में न पड़ें, भोगविलास से द-ूर हट जाय, अपनी बढ़ाई और प्रसिद्धि को विष की तरह त्याग दें । अपने हृदय की मलीनता को दूर करता जाय जिससे अभ्यास और भजन में बाधा न पड़े और सतगुरु के बताये हुए मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होता जाय ।

ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनमें संतो की वाणी हो जिससे प्रेम अंग उभरे और मन को चेतावनी मिले । यदि अपने ही सिलसिले की ऐसी पुस्तकें हों तो उत्तम है अन्यथा किसी मिलते जुलते सिलसिले की किताबें देखें । वैसे तो भक्ति, ईश्वर प्रेम व् चेतावनी पर अनेकों अच्छी-अच्छी पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनकी कोई गिनती नहीं है, उनमें से जो अच्छी लगे वह ठीक है लेकिन सबसे उत्तम वह है जो गुरु ने बताई हो । उन्हें समझसमझ कर पढ़े और उनमें - लिखी हुई बातों पर मनन करें। ऐसा करने से ईश्वर प्रेम तो बढ़ता ही है, साथसाथ - अपनी बुराइयों पर भी दृष्टि जाती है और उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है। जितने समय वह पुस्तक पढ़ता है उतने समय के लिए दुनियाँ के खुराफ़ात से बचता (बुरी बातों) है।

संतों की सोहबत में केवल परमार्थी हित के लिये जायें, दुनियावी स्वार्थ के लिये नहीं

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

बहुत से लोग संतों के पास जाते हैं और कुछ उनकी सँगत में बहुत दिनों तक रहते भी हैं, परन्तु उन्हें कुछ आत्मिक लाभ नहीं होता। इसका कारण यह है कि अधिकतर लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं जाते। वे जाते हैं सँसार और उसके भोग विलास की चीज़ें माँगने के लिए, अपने दुनियावी स्वार्थ को पूरा करने के लिये। संत तो दुनियाँ उजाड़ते हैं, उनके पास परमार्थ बटता है, दुनियाँ थोड़े ही मिलती है। पर जो लोग वास्तव में अपने परमार्थी हित की कामना लेकर जाते हैं, वे उसका लाभ उठाते हैं। कहीं ऐसा भी देखा गया है कि जाते तो परमार्थ लाभ के लिये हैं किन्तु उनके पास जाकर उनकी दया का अनुचित लाभ उठाते हैं, परमार्थ लाभ तो एक तरफ़ रहा, आपस में एक दूसरे से वैमनस्य रखने लगते हैं और अशान्ति पैदा कर देते हैं। यह निचली वासनायें हैं। संत की सोहबत में रहने का आशय तो यह है कि पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठो, अपनी साँसारिक इच्छाओं को वश में करो और अपने मन को मारो। यदि ऐसा न करोगे और अपनी कमज़ोरियों का शिकार बने रहोगे और ढ़ील देते रहोगे तो संतों के सत्संग का क्या लाभ ? जीवन निर्थक हो जायेगा। दर्पण के सामने इसलिए जाते हो कि उसमें देखकर अपने मुखड़े को साफ़ कर लो। यदि ऐसा न करोगे तो दर्पण में मुख देखने से लाभ ही क्या है ? (राम सन्देश : मई-जून,२००७

संध्या-पूजा में मन क्यों नहीं लगता - क्या करें?

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हम सभी इस काल्पनिक जगत में फँसे हुए हैं और कहते हैं कि संध्या-पूजा में मन नहीं लगता, फायदा नहीं होता। हो भी तो कैसे ? हम चौबीसों घंटे दुनियाँ की चिन्ता में रत रहते हैं। इसी को अपना लक्ष्य मान रखा है। श्रष्टि के नियमाकूल दुनियाँ चलती रहती है और आगे भी चलती रहेगी। यह अपनी चाल नहीं बदल सकती, नहीं छोड़ सकती। इसके कर्म भी हमें करने ही पड़ेंगे। हम सत्संगियों को चाहिए कि हम अपना फ़र्ज़ पूरा करें। तजुर्बा हासिल कर नश्वर पदार्थों से अपना सम्बन्ध विच्छेद करें और सारी वस्तुओं को दृढ़ता से ग्रहण करें। संत जन यह कभी नहीं कहते कि दुनियांवी फ़र्ज़ पूरा न करो। फ़र्ज़ अवश्य पूरा करो लेकिन ड्यूटी समझ कर जैसे संडास में ज़रूरत भर बैठते हो। मान लो कोई काम करना ही पड़े तो उसे करो। परन्तु उसमें फलासक्ति न रखो वरना संस्कार बने वगैर न रहेंगे, और अन्त में उन्हें भुगतना भी पड़ेगा। फल त्याग का यह मतलब भी नहीं है कि कर्मफल का सर्वथा परित्याग कर दो, अपरंच उसे अपने इष्ट को अर्पण कर दो। भला भी उसी का, बुरा भी उसी का। अपना उसमें कुछ भी नही। ऐसा करते रहने से संस्कार बनना रुक जायेगा और जब संस्कार ही नहीं रहे तो आवागमन कैसा? यही अधिकार बनना है। यह कहीं बाहर से नहीं आता है और न मिलता है। जो कुछ है वह तुम्हारे अन्दर है। मान लो कि कमरे की सफाई करनी है तो पहले यह आवश्यक है कि दरवाज़े ठीक से बन्द कर लो, फिर उसमें झाड़ू लगाओ। तब तो कमरा ठीक से साफ़ होगा वरना एक तरफ़ से झाड़ू लगाओगे और दूसरी तरफ़ खिड़कियों और दरवाज़े के रास्ते गुबार आते रहेंगे और कमरा कभी साफ़ न हो सकेगा।

इसी प्रकार हृदय-रूपी कमरे को साफ़ करने के लिए ज़रूरी है कि पहले उन इन्द्रियों पर बन्द लगायें जो अहंकार बनाती हैं। संस्कार बनने के कई रास्ते हैं - जैसे कान से शब्द को सुनकर, आँखों से देखकर, जिह्वा से खाकर और चमड़े को स्पर्श करके। इनमें समता लाओ। फिर सत-असत विवेक की कसौटी पर इन्द्रिय-जन्य ज्ञान को कसो। असत्य का परित्याग कर सत्य को अपनाओ और वैसा ही अपना सहज स्वाभाव बना लो। फिर तुम्हें संतों के संग में जाने और उनके सदवचनों को सुनने और समझने पर पर जन्म-जन्मान्तर के दबे संस्कारों को उघेरने का मौका आयेगा। जब वे संस्कार उखड़ें, उन्हें परमात्मा की एन कृपा समझ कर भोग लो। जहाँ अपने को कमज़ोर पाओ, उनसे दुआ करो। वे तुम्हें भोगने की शक्ति देंगे। इस तरह सतत प्रयत्न करते-करते तुम अपने हृदय की सफाई कर सकोगे। तब तुममें अधिकार जागेगा। अपनी चेष्टा से यह कदापि नहीं हो सकता। सतगुरु की ओट लो। उनके चरणों में अपने आपको समर्पण कर दो। निरन्तर उनका ध्यान रखो और उन्हीं में लय हो जाओ। उनकी ही कृपा से तुम्हारा मन मरेगा, आप टूटेगा और आत्म-साक्षात्कार होगा। रास्ता कटने से कटता है। इसको कहाँ तक खोलकर समझाया जाये। वाणी भी किसी हद तक ही जा सकती है। अनहद में तो सिर्फ आत्मा ही गम्य है, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब पीछे रह जाते हैं ।

"मैं किसी बन्दिश (बन्धन) को नहीं मानता। मैं तो एक प्यार का रिश्ता जानता हूँ"।

(ब्रह्मलीन आदिगुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

सत्संगी, सिद्ध, संत-सद्गुरु-संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

सारे सन्सारी जीव इन्द्रिय-भोग में फँसे हुए हैं और उसी में आते-जाते और चक्कर काटते रहते हैं। इन्द्रियों का सुख शाश्वत नहीं है और इस सुख के साथ विशेष दुःख लगा हुआ है। जो इस सच्चाई को जानकर अभ्यास करता हुआ, आत्मा या परमात्मा को अपना लक्ष्य बनाकर अभ्यास करता है, वह सत्संगी कहलाता है। यह छठे चक्र यानी आज्ञा-चक्र से कुछ ऊपर चढ़ गया है। उसके साथ सत्संग करने से कुछ न कुछ इन्द्रियों को वश में करने में मदद मिलती है।

दूसरे अभ्यासी वह हैं जो त्रिकुटी से ऊपर निकल गये हैं लेकिन सतलोक तक नहीं पहुँचे हैं। इनको सिद्ध कहते हैं। इनके साथ सत्संग करने से मन की वासनाएँ दूर होने लगती हैं और मन कुछ एकाग्र होने लगता है।

तीसरे अभ्यासी वे लोग हैं जो सतपद से पार हो चुके हैं। इनके साथ अभ्यास करने से असली परमार्थ बनना आरम्भ होता है और इन्हीं को संत या सद्गुरु कहते हैं। संतों का सत्संग किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिन लोगों को असली परमार्थ की चाह है उनको चाहिए कि संत सद्गुरु की खोज करें और अगर वे सौभाग्यवश मिल जावें तो उनकी संगति से लाभ उठाकर अपना काम बना लें, क्योंकि यह रत्न अनमोल है। और अगर वे न मिल पायें तो किसी साधु की मदद लेकर अभ्यास प्रारम्भ कर दें और संत सद्गुरु मिलने पर उनकी शरण ले लें। अगर संत सद्गुरु न मिलें तो किसी ऐसे साध की संगति अख़्त्यार करें जो किसी संत की सोहबत (सात-संगति) उठा चुका हो और अभ्यास करता हो

और त्रिकुटी से या तो पार हो गया हो या होने वाला हो। यदि वह भी न मिलें तो किसी ऐसे प्रेमी-भक्त से, जो किसी साध की संगति उठा चुका हो, अभ्यास सीख कर शुरू कर दे और साध या सद्गुरु की तलाश में रहे। बिना सद्गुरु की शरण लिये और उसका सत्संग किये असली परमार्थ नहीं बन सकता।

गुरु ने कहा और उसने मान लिया कि जो कहा गया सच है. उस पर अमल करने से उसे खुद तजुर्बा हो जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता तजुर्बा करके वह उस हालत को पा जाता है. अगर साधक के प्रेम में कमी है तो तरक़्क़ी भी कम होती है, आरज़ी या temporary (अस्थायी) होती है।

जैसे, अगर गुरु की कोई बात उसे अच्छी लगी, उसे क़बूल कर लिया और अगर किसी बात में बुराई दिखाई दी, तो उसे दरगुज़र कर (टाल) दिया। लेकिन आगे चलकर जब वह ग़ौर से देखता है तो वह बुराइयाँ उसे अपने अन्दर ही नज़र आती हैं।

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

दुनियाँ में शहद की मक्खी की तरह रहो। वह फूलों का रूप नहीं बिगाड़ती मगर रस चू स लेती है। ग़ा फ़िलों से सचेत और होशियारी में जाग्रत रहकर बुद्धिमान व्यक्ति उन्नति कर जाता है।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतारसिंह जी महाराज

सन्त दयालपुरुष के निज पुत्र हैं

(महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज कृत पुस्तक - "गुरु-शिष्य संवाद " से उद्धृत)

परमेश्वर की दूसरी धार जिस रहमान या दयाल कहा गया है, वह दुनियाँ के उन लोगों के उद्धार के लिए है जो अपने आपको जीवन-मरण के चक्र से छुड़ाना चाहते हैं, यहाँ के झँझटों और दुःखों से ऊब गए हैं जिनको हमेशा की शान्ति और आनन्द की चाह है। सन्त दयालपुरुष के निज पुत्र हैं। रहमान की रहमत और दयाल की दयालुता उनमें पूर्ण रूप से विद्यमान है। उनकी बैठक दशम द्वार पर होती है। अन्दर से वे दयालपुरुष के चरणों में लीन रहते हैं और शरीर से वे दुनियाँ के काम-काज करते हैं। जीवों को दुनियाँ और उसके सामान की नाशवानता का ज्ञान कराते हैं। भूले-भटकों को चेताते हैं, दीन-दुखियों को शान्ति का सन्देश देते हैं, परमात्मा के प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। सच्चाई, नेकी और भक्ति के रास्ते पर चला कर एक दिन उन्हें दयालपुरुष के चरणों तक पहुँचा देते हैं, जहाँ पहुँचकर दुनियाँ में फिर आना नहीं होता। जीवन मरण के चक्र से मनुष्य छूट जाता है।

जो असली गुरु है और जो सबका एक ही है, वह तो परमात्मा ही है। लेकिन दुनियाँ के लोगों को चेताने और उनका कल्याण करने के लिए वह अपनी शक्ति अपने निज-पुत्रों के रूप में भेजता है जिन्हें गुरु, सद्गुरु, सन्त, ऋषि, औलिया, आदि नामों से पुकारते हैं। एक समय में एक गुरु भी पैदा हो सकता है और अनेक भी। गुरु का पैदा होना समय का प्रश्न है। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है वहाँ उसी प्रकार वह पूरी की जाती है। एक मनुष्य सारे सँसार में अकेला काम नहीं कर सकता। सारे मनुष्य एक से विचारों और भावनाओं के नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम, विश्वास और सहानुभूति भी एक के साथ नहीं हो सकती।

गुरु या सन्त लोग प्रेम को लेकर चलते हैं। प्रेम के द्वारा ही वे शिक्षा देते हैं। प्रेम में ऐसा आकर्षण है कि कैसा ही निष्ठुर-हृदय व्यक्ति क्यों न हो, पिघल जाता है। अवतारों की भांति गुरु लोग अस्त्रों का प्रयोग नहीं करते। किसी को सज़ा नहीं देते। यदि कोई प्रेम से राहे-रास्त पर आ जाय तो ठीक है, अन्यथा उसको दण्ड नहीं देते, उसके लिए दुआ करते हैं।

हमें तो मानो गंगा के प्रवाह में अपने आपको समर्पित कर देना है। करना नहीं कराना कुछ-। प्रवाह जिधर भी ले जाए उसी के साथ बढ़े चलें। कोई अवरोध नहीं करना है, कोई प्रयास नहीं करना है। इस प्रकार होना है जैसे कि कलाकार पत्थर को एक सुन्दर मूर्ति के रूप में ढ़ाल देता है। साधक को स्वयं को भी इसी प्रकार उस महानतम कलाकार में छोड़ देना है के हाथों (परमात्मा)।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

जाग्रत अवस्था में आकर संघर्ष करो। गिरते हो, कोई हर्ज़ नहीं, लेकिन रास्ते पर क़ायम रहे और चलते रहे तो एक दिन सफलता ज़रूर मिलेगी। थक कर रुक गए तो जो अभ्यास किया है वह व्यर्थ नहीं जायेगा, मगर जैसा गीता में भगवान कृष्णा ने कहा है, फिर शुरुआत होगी। हो सकता है मन बिलकुल ही उसे दबा दे किन्तु अगर किसी ने सतगुरु से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है दयाल पुरुष तक पहुँचने के लिए तो उसको मदद बराबर मिलती रहेगी। वह फंसेगा नहीं, सम्भव है वह एक जन्म में ही भवसागर पार हो जाये।

********* (ब्रह्मलीन परम संत डॉ. करतारसिंह जी महाराज)

सन्तों का निर्मल परमार्थ व आत्मा की आज़ादी

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

परमार्थ-पथ पर चलने वालों को धीरे-धीरे मन्ज़िल तय करनी चाहिए। इससे स्थिरता आ जाती है। तेज़ी से न तो हरेक चल सकता है और न ही उसमें मज़बूती आती है। जो जितना तेज़ चलेगा उतना ही उसे गिरने का भी डर रहेगा। पहले अपने को तम से सत पर ले जाओ। तुम रज के स्थान पर हो, कभी तम की तरफ़ जाते हो, कभी सत की तरफ़। जब मन बुरी आदतों की तरफ़ जाता है, बुरे काम करता है और बुराई सोचता है, तब वह तम की तरफ़ जाता है। उसे वहाँ से हटाकर अच्छी बातों में लगाओ। नेक सोचो, नेक करो और नेक बनो - यानी मन और वचन से नेकी का ही व्यवहार हो, तब तुम सत पर आ सकोगे। मगर जिस तरह तम में बन्धन है, उसी तरह सत में भी बन्धन है। एक लोहे की ज़ंज़ीर है तो दूसरी सोने की। जहाँ अच्छाई मौजूद है वहाँ बुराई का ख़्याल पहले मौजूद है। अच्छाई और बुराई एक ही तस्बीर के दो पहलू हैं। इसलिए सत पर आने के बाद उसे भी छोड़ दो, उससे ऊपर आ जाओ। यानी काम तो नेक करो लेकिन अपने को उसका कर्ता मत समझो। स्वभाव ही ऐसा बन जाय कि सब काम ख़ुद-ब-ख़ुद अच्छे होने लगें। जहाँ बुराई का काम करने से बुरा संस्कार बनता है, वहाँ अच्छाई का काम करने से अच्छा संस्कार बनता है। दोनों में ही बन्धन है। बुरे को बुरा भोगना पड़ेगा और अच्छे को अच्छा। मोक्ष कहाँ हुई ? इसलिए अच्छाई के ख़्याल से भी ख़ुद को हटा लो। स्वभाववश सब काम अच्छे हों, सब सोचना अच्छा हो और व्यवहार भी अच्छा हो। सत्कर्म, सतविचार और सद्व्यवहार। जब ऐसे बन जाओगे तब चित्त की निरोधावस्था पैदा होगी, यानी चित्त अपनी कलाबाज़ियाँ करना बन्द कर देगा। इसके बाद आत्मा मन के दबाब से छुटकारा पाने लगती है, और यहीं से परमार्थ का रास्ता खुलता है।

हमारे यहां का साधन प्रेम का साधन है। अपने आप को लय कर देना है परमात्मा में , इसमें द्वेत नहीं होता परन्तु थोड़े दिन के लिये एक दूसरे से प्रेम करते हैं , जिससे यह प्रेम बढ़ते बढते हमारा स्वभाव बन जाता है। हम अपने में गुरु का , परमात्मा का रूप देखें , हमारे कानों में जो स्वर पड़े वह ऐसा मालुम हो कि ॐ कार की ध्वनि है। सबमें वही ध्वनि है । ॐ , ॐ की आवाज़ है। अनहद शब्द की झंकार है। भीतर में . भीतर ही नहीं बाहर भी , बाहर में सब ओर ईश्वर ही ईश्वर दिखाई दे । जिव् हा से जो शब्द निकले वह मधुर शब्द निकलें , ईश्वर का प्रेम लिये हुए हों। दैवी गुणों को लेकर करें हम जो भी व्यवहार करें वह , अप्रयास हो , प्रयास न करना पड़े। यह सहज समाधि है। आंखें बंद हैं तब भी प्रेम है , बात चीत कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है , व्यवहार कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

कुछ साधक केवल मौन साधना करते हैं किन्तु वे शिकायत करते हैं कि इसमें रूखापन रहता है, आनन्द नहीं आता। तो आनन्द नहीं आने का कारण पात्रता का न होना है। मौन साधना की पात्रता हासिल करने के लिए एक सरल युक्ति का अभ्यास करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वह युक्ति यह है कि प्रतिक्रिया करने की आदत का त्याग करें। हम देखते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, सुनते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, खाने में रस आता है तो प्रतिक्रिया करते हैं , कुछ सूंघते हैं या कोई वस्तु छूते हैं तो भी भाँति की प्रतिक्रियायें करते रहते हैं भाँति- । मन में संकल्पविकल्प उठते हैं- तो प्रतिक्रिया करते हैं। जब तक इन प्रतिक्रियायों का तांता नहीं टूटेगा, तब तक मौन साधना सधेगी कैसे ?

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

आप सब से अनुरोध है कि महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करें । उनका जीवन हमारे लिए शास्त्र हैं, उपदेश हैं । उनके जीवन का अनुसरण करें । गीता के उपदेश को, भगवान राम की मर्यादा को, सन्तों के जीवन को अपनायें । उनके जीवन का अनुसरण करने से हमारा जीवन भी दुःख रहित हो जायेगा । चाहें कितने भी कष्ट हमारे जीवन में आ जायें, हमारे भीतर की शान्ति विचलित नहीं होगी, हमारा मन विक्षिप्त नहीं होगा । हमारा मन विक्षिप्त तभी होता है, तभी दुःखी होता है जब हम अज्ञान में होते हैं । हमारे में अज्ञान तब तक है जब तक हमारे में आसक्ति है, सच्चा प्रेम नहीं है, सच्चा ज्ञान नहीं है । इसलिए आप सबसे अनुरोध है, करबद्ध प्रार्थना है, केवल बातों को सुना ही नहीं जाय, किताबों की पूजा ही न की जाय, किताबों में जो कुछ ज्ञान है, उस ज्ञान की गंगा में स्नान किया जाय । अपने भीतर में शान्ति रखें । कितनी भी दुःखद घटना आ जाय, कितना भी सुःख आ जाय, हमारी समता भंग न हो । जब तक समता नहीं बनेगी, मानसिक सन्तुलन नहीं बनेगा, तब तक सच्ची शान्ति नहीं मिलेगी ।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज(

युद्ध में हज़ारों आदमियों को पराजित करके भी व्यक्ति सूरमा नहीं कहलाता। अपने आप पर विजय पाने वाला व्यक्ति सच्चा सुरमा है।

----------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज

साधना का मूल तत्व

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

मन के विकारों में सुरत की धारों का बिखेर होता है। इसके कारण प्रभु चरणों की ओर अनवरत समूह नहीं बन पाता। महादेव जी के मन्दिर में पिण्डों के ऊपर जलहरी में जल भरकर रखते हैं और ऐसी व्यवस्था करते हैं कि बून्दों का प्रवाह महादेव जी की पिण्डी पर निरन्तर बहे। इस भौतिक प्रयोग में साधक को यही समझाने की चेष्टा की गयी है कि तमाम साधना का तत्व यह है कि आपकी सुरत की धार विकारों में अटके बिना आदि महादेव की ओर बढ़े तभी उनके दर्शन का विलास आपको प्राप्त होगा ओर आप कृतार्थ हो जायेंगे।

पर सामान्यतः ऐसे आनन्द की अनुभूति होती क्यों नहीं ? इसका कारण मन की चंचलता है। बिना मन की चंचलता को त्यागे ईश्वर का सामीप्य नहीं मिल सकता। होता यह है कि वास्तव में हम अपने मन का संग करते हैं, परमात्मा या गुरु का, सत का, संग नहीं करते। गुरु के संग और प्रभु के संग में कोई अन्तर नहीं है। गुरु भी ईश्वर में लय होकर आपकी सेवा में बैठता है। वह कुछ नहीं करता है - उसका शरीर अपने रोम-रोम के द्वारा परमपिता परमात्मा के प्रेम की किरणें चारों ओर फैलाता है।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

हमारा असली रूप क्या है ? अभ्यास करने की ज़रूरत और अहमियत

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ . श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

हमारा असली रूप क्या है ? हम आत्मा हैं, हम ईश्वर हैं। हमारे असली रूप पर मन और माया के परदे पड़ गए हैं जिनसे वह छिप गया है। अभ्यास यह है कि इन परदों को झीना (thin) करते चलो। बादल जितने गहरे होंगे, सूरज का प्रकाश उतना ही दबा हुआ होगा। यदि वे परदे झीने होते जावेंगे तो सूरज का प्रकाश उतना ही साफ़ नज़र आयेगा। इन्द्रियों का दमन करो। मन की वासनाओं को, जिनके बिना काम न चले, दिन-ब-दिन झीना करते चलो। तब देखोगे कि प्रकाश ही प्रकाश है।

आप स्वयं ही देख लीजिये कि अगर इच्छाओं को कम करते जायेंगे तो ख़ुशी हासिल होती जायेगी। क्यों ? क्योंकि आत्मा के परदे हटते जाते हैं, इसका प्रतिबिम्ब (reflection) आनन्द आपको महसूस होता जायेगा। अभ्यास से संस्कार ख़त्म नहीं होते, वे तो भोगने ही पड़ेंगे क्योंकि यह प्रकृति माँ का विधान है। लेकिन अभ्यास से अपनी तक़लीफ़ों को कम महसूस करोगे । अभ्यास से अपने दुःखी जीवन (miserable life) को आनन्दमय (blissful) बना लोगे। इसलिए अभ्यास करने की ज़रूरत और अहमियत (महत्व) है ।

के दोष बताकर उसे परमार्थ के मार्ग में आगे बढ़ने में मदद करते हैं।

----------परम संत डॉ. करतारसिंह जी

अभ्यास में मन का ठहराव रस और आनन्द

(ब्रह्मलीन महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (

यदि अभ्यास के समय विरह तथा उमंग की दशा न हो तो चाहिए कि कुछ भजन या पद या ग़ज़ल समें चेतावनी होजि (जैसा मन को भावे), ईश्वर प्रेम हो, उसे पढ़े और उसके शब्दों पर ध्यान दे, यानी ग़ौर करे, फिर अभ्यास में बैठे । अपनी कमी और त्रुटियों को देखते हुए, मन में दीनता लाये और कोई प्रार्थना, चाहे वह पद्य के रूप में हो या गद्य के रूप में, ईश्वर की दया प्राप्त करने के लिए करे । अपने आपको गुनहगार और दोषी समझते हुए ख़्याली तौर पर अपना सिर गुरु के चरणों में टेक दे और तब ध्यान शुरू करे । ऐसा करने से मन ठहरने लगेगा और ध्यान ठीक से हो सकेगा । यदि इस पर भी मन न माने और संसार के निरर्थक विचार उठावे तो कोई भजन गाने लगे और उसी में अपने ध्यान को शामिल कर दे । फिर भी मन की उथल पुथल बनी रहे तो किसी वाणी या रामायण आदि - पाठ करने लगे (जो मन को भावे) काया नाम का ज़ोर ज़ोर से उच्चारण करने लगे- ।

बहुधा देखा गया है कि उपरोक्त युक्तियों से मन की गुनावन दूर होने में सफलता मिलती है और वह अभ्यास में टिकने लगता है जिससे पूजा में रस तथा आनन्द आने लगता है । परन्तु कोईकोई ऐसे भी होते हैं जिन्हें इन युक्तियो-ं से भी, जैसा चाहिए लाभ प्राप्त नहीं होता । ऐसी स्थिति में समझ लेना चाहिए कि मन अत्यन्त कर्मी और मलिन है । उसकी सफ़ाई का इलाज संतों ने यह बताया है कि कुछ दिनों होशियारी के साथ सत्संग करे । सतगुरु और उनके प्रेमियों की सेवा करे, सत्संग में जो प्रवचन होते हैं उन्हें ध्यान पूर्वक चित्त देकर सुने और उन पर मनन करे और उन्हें अपने व्यावहारिक जीवन में सक्रिय रूप दे । तब कुछ समय में मन की सफ़ाई होने लगेगी और जैसेजैसे मन साफ़ होने लगेगा-, उसमें शौक़, चाव और उमंग पैदा होने लगेंगे जिनके फलस्वरुप अभ्यास में मन का ठह-राव होगा तथा रस व आनन्द भी मिलने लगेंगे ।

भगवान दक्षिण मूर्ति के पास जो भी जिज्ञासु आता था , वह मौन रहते थे , बोलते नहीं थे । जिज्ञासु को कहा जाता था कि वह भी मौन होकर बैठ जाये । ईश्वर कृपा या गुरु कृपा जो मौन में होतीं है वह प्रवचनों द्वारा नहीं होती। प्रवचनों से मार्गदर्शन तो मिलता है , कुछ रस भी मिलता है परन्तु वास्तविक अनुभूति , वास्तविक ज्ञान मौन से ही मिलता है । बाहर का मौन महत्वपूर्ण है परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है अन्दर का मौन। मौन के द्वार से गुज़र कर ही हम आत्मा के द्वार तक, परमात्मा के पास तक पहूंच सकते हैं । तो प्रयास करना चाहिये कि सत्संग में बैठे हों, या सत्संग न हो रहा हो , मौन रहने का अभ्यास करें। आन्तरिक मौन रहने का अभ्यास करें, इससे एक असीम शक्ति उदय होती है । जो व्यक्ति हर वक़्त बोलता रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही नहीं होगा। कभी - जो व्यक्ति कभी बोलता है और भीतर में शान्त रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही बोलेगा। इसलिए न काआन्तरिक मौजितना भी अभ्यास हो सके करना चाहिये ।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

महर्षि रमन बहुत कम बोलते थे । जो भी जिज्ञासु उनके पास जाता था , वह भी चुप करके बैठ जाता था । अपने प्रश्न मन में रख लेता था , क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके मन में दुविधा न हो । उनके पास बैठने से जो भी प्रश्न होते थे , उनके उत्तर स्वयं बिना बोले मिल जाते थे । आप भी करके देख सकते हैं । चाहें आप सन्त के पास बैठें , चाहें परमात्मा की सेवा में बैठें , चुप करके बैठ जाइए । १०,१५,२० मिनिट मौन होकर बैठ जाइए । जो भी प्रश्न आपके हैं , उनके उत्तर आपको मिल जायेंगे ।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

यह प्रेम का रास्ता है। मीरा जी का प्रेम देखिए। सब कुछ न्यौछावर कर दिया उस सांवले सलौने भगवान पर। न जी जैसी या अन्य महापुरुषों जैसी साधना जो मीरा जैसी या हनुमा नहीं कर सक्ते वे साधारण साधन अपनायें जैसे आचार व्यवहार सुधारना -, भक्ति करना और बुद्धि का सदउपयोग करना। व्यवहार हो- चाहे आचार , चाहे भक्ति , बुद्धि, ज्ञान की साधना हो , अपने गुरु पर विश्वास करना चाहिये। वह . कहें वैसा करना चाहिये जैसा वह आपको बतला देंगे कि आपको किस प्रकार का साहित्य पढ़ना चाहिये। यदि शेष सब ठीक है, केवल प्रेम उत्पन्न नहीं होता , जब सत्संग में बैठते हैं तो चक्षुओं में अश्रु प्रगट नहीं होते तो ऐसे भाइयों के लिए उचित होगा कि वे प्रेमी लोगों का संग करें। मीरा जी , सूरदास जी के भजन , उनका जीवन चारित्र पढ़ें .। गुरु अंगद देव जी ने कोई साधना नहीं की केवल अपने इष्टदेव गुरु नानक देव जी की सेवा की , उनका आज्ञा पालन किया , अपने को गुरु के समर्पित किया।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

मन जो है वह प्रभु ने एक बड़ा विचित्र उपकरण दिया है । इसको अपने अधीन करना हैं । हम इसके अधीन न हों । जब चाहें इसका उपयोग कर लें , जब चाहें इसे मौन कर लें । इसको ऐसा साधा जाय कि यह शान्त बैठा रहें । परन्तु हमारे भीतर में क्या होता है ? चारों ओर भाग दौड़ , अशान्ति । ऐसा व्यक्ति शान्ति कैसे पा सकता है ? तो मौन की साधना करनी होगी । हमारी सम्यक बोली होनी चाहिये । ऐसी बोली निकालिये जिससे किसी को हानि न हो , दुःख न पहुँचे ।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज

हमको इस बात से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये कि हम प्रातः सांय साधना में बैठ गये , कभी कभी सत्संग में भी सम्मिलित हो गये-। यह प्रेम साधना नहीं है। हमारे इस वंश के महापुरुषों की यह विशेषता है , सुन्दरता है , बरकत है कि जितना प्रेम इस सत्संग में पाया जाता है वह बाहर नहीं है। परन्तु इस प्रेम ज्योति को सारे संसार में प्रकाशित करना होगा। यह केवल मेरा ही काम नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि मैं यह नहीं कर सकता। पर यह काम आप सबका है। काम का मतलब यह नहीं कि आपको किसी मंच पर जाकर प्रवचन देना होगा या प्रचार करना होगा। आपको अपने जीवन को प्रेम मय बनाना होगा-। आपके सम्पर्क में जो भी आए , उसके साथ आपका जो भी व्यवहार हो , प्रेम मय हो-, उसमें ईश्वर के प्रेम का विकास हो। घर में कुछ रूप है , दफ़्तर में , क्लब में , राजनीति में कुछ और रूप हैं , एसा व्यक्ति साधना का जो लक्ष्य है ' प्रेम ' उसका अधिकारी नहीं बन सकता। एक ही रूप होना चाहिये।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

सत्संगी को चाहिए कि वह सत्पुरुष दयाल परमात्मा, जो असली भण्डार है, उसके चरणों को दृढ़ता से पकड़े और उनको सर्वसमर्थ और सबका प्रेरक जाने । जो भी काम वह करे उसके फल की आशा न रखे, उसे मालिक की मौज़ पर छोड़ दे । कोई काम करने से पहले अपनी बुद्धि से ख़ूब सोचसमझकर- विचार कर ले । इससे बुरे का निषेध तो पहले ही हो जायेगा । वह बुराई से बच जायेगा । और, जब वह यह समझ ले कि इसका नतीज़ा अच्छा निकलेगा, तभी उस काम को करे । इतना करना तो उसके हाथ में है, लेकिन जैसा फल उस काम का उसने सोच रखा है, वैसा फल मिले या न मिले, यह उसके हाथ में नहीं है । यह उस सर्व समर्थ और कुल मालिक के हाथ में है । इसलिए फल उसकी मर्ज़ी पर छोड़ दे । लड़का बीमार है तो अपनी हैसियत के मुताबिक़ इलाज हरेक कराता है और उस इलाज के फलस्वरूप आशा रखता है कि वह लड़का अच्छा हो जायेगा । इतना करना उसके हाथ में है और यह उसका कर्तव्य है । पर लड़के का अच्छा होना या न होना यह मालिक के अख़्त्यार की बात है (अधिकार) । दुःख तब होता है जब हम किसी काम के नतीज़े पर निगाह रखते हैं (दृष्टि) । जैसा नतीज़ा हम चाहते है अगर वैसा नहीं होता तो हमें दुःख होता है । इसलिए जैसी परमात्मा की मौज़ हो उसी में राज़ी रहें और जितना बन सके भजन, सुमिरन, ध्यान तथा महापुरुषों की वाणी का पाठ करें । सत्संग करें और दीनदुखियों की-, बड़ों की और गुरुजनों की सेवा करें । यह दृढ़ विश्वास अपने मन में रखें कि मालिक दयालु है, वह हमेशा मेरे लिए अच्छा ही करेगा । इस भावना को लेकर अगर कोई संसार में व्यवहार करे तो गुज़ारा मुमकिन है (सम्भव) ।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० कृष्णलाल जी महाराज)

"अहंकार से प्रभु नहीं मिलते, चाहे कोई भी साधन करिये दीनता को तो अपनाना ही होगा"

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

संसार के प्रति आसक्ति

(प्रवचन पूज्य गुरुदेव डॉ० करतार सिंह जी साहब)

किसी प्रकार की आसक्ति न हो।व्यक्ति, विचार या वस्तु की कोई आसक्ति न हो । केवल परमात्मा के साथ प्रेम हो ।ये सब जितने रिश्ते हैं पिता है, पुत्र है सन्तान है ये सब यहीं रह जाएंगे । प्राण छूटते हैं तो घरवाले कहते हैं कि जल्दी जल्दी निकालो, कोई भी दो चार मिनट अधिक रखने को तैयार नहीं । वहाँ श्मशान भूमि में जाते हैं तो कहते हैं कि सुखी लकड़ी लाना, जल्दी जल्दी जले यानी मरने के बाद कोई अपनत्व है ही नहीं । ये जितने भी सम्बन्ध है ये सब मन व शरीर के हैं । जिनसे सम्बन्ध तोड़ने होंगे ।तोड़ने का मतलब है कि इनसे ही सम्बन्ध रखें जितने जरूरी है । बाकी जो हमारा कार्य होगा साधना होगी वह प्रभु प्राप्ति के लिए ही होगी । हम इन्हीं सम्बन्धो में ही सारा समय व्यतीत कर रहे हैं । कोई दो,चार,दस मिनट ईश्वर प्राप्ति हेतु साधना में भले ही लगावे अन्यथा हमारा सारा समय इन्हीं सम्बन्धों में व्यतीत हो जाता है।यह सब मन है आसक्ति है।

. गुरुदेव सबका भला करें।

हमलोग स्व-निरीक्षण नही करते, हम दूसरों पर निरीक्षण करते है, हम अपने को मान के चलते है कि हम ती बिलकुल परफैक्ट है, हममे कोई कमी नहीं है, कमी अगर है तो उसमे है, यह गलत बात है। हमें अपने आप को सुधारने कि कोशिश करनी है, जिससे कि हमारा जीवन सफल हो।

परम संत डा० शक्ति कुमार सक्सेना

आत्मा का निखार

(प्रवचन परम् संत डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

जब हमें किसी चीज से सुख मिलता है तब हम ईश्वर को बड़ा धन्यवाद देते हैं और जब किसी चीज से दुख मिलता है या मुसीबत आती है तो ईश्वर से दूर भाग खड़े होते हैं या उसे मज़बूरी में बर्दाश्त करते हैं लेकिन ईश्वर को धन्यवाद नहीं देते और न उसमें खुश होते हैं । यही कहते हैं कि ईश्वर को ऐसा ही मंजूर था ।लेकिन यह मालिक की मर्जी के साथ सहयोग करना नहीं है।आत्मा अभी निखरी नहीं ।

असल निखार तब होगा जब लड़का मरने पर भी वही खुशी हो जो लड़का पैदा होने के वक़्त लोग मनाते हैं । पूज्य महात्मा रामचन्द्रजी महाराज जिगर के कैंसर से पीड़ित थे । उन्हें बहुत तकलीफ थी लेकिन वे सदा प्रसन्न दिखाई पड़ते थे ।किसी भक्त ने उनसे निवेदन किया कि आप इसे अच्छा करने के लिए ईश्वर से दुआ क्यो नहीं करते हैं ? ईश्वर अपने प्यारे भक्तों को ही इतनी तकलीफ क्यों देता है ? उन्होंने कहा-"अगर तुम्हारा माशूक तुम्हारे मुँह पर प्यार से एक थप्पड़ लगा दे तो उसे तुम तकलीफ समझोगे या उसकी एक अदा ? क्या तुम उससे खुश होगे या नाराज ? इसी तरह तकलीफ भी माशूक की एक अदा है । ईश्वर हमारा प्रियतम है और प्यार में उसने अगर कोई मुसीबत भेज भी दी तो वह उसकी अदा है इसमें हमें बड़ा आनन्द आता है "

कहने का मतलब यह है कि जब तक पूर्ण समर्पण नहीं हो जाता, ऐसी अवस्था नहीं आती ।

. गुरुदेव सबका भला करें।

दुनियाँ में सभी मन मत है। वह गुरु इसलिए करते हैं कि दूसरे लोग उनके विचारों की, चाहे वो अच्छे हों या बुरे, पुष्टि करें जिससे वह निर्भय होकर अपने विचारों के अनुसार चलें। अगर उनके विचारों को गलत कहा जाता है तो वह कहने वाले से नाता तोड़ लेते हैं।

---------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज

गुरु की सच्ची कृपा

प्रवचन परम् सन्त श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

यह जिन्दगी झुठी जिन्दगी है । आत्मा मलीन मन के पर्दो में दबी हुई है। जब वह पर्दे हट जाते हैं और आत्मा निखार जाती है तभी असली जिन्दगी शुरू होती है। जब किसी पर ईश्वर कृपा होती है और वह उसे अपनाना चाहता है तो उसके बन्धन टूटने लगते हैं। सबसे पहले उसकी प्यारी से प्यारी चीज उससे छीनी जाती है।दुनियादार इसे देखकर रोते हैं, सन्त खुश होते हैं कि हे प्रभु । कितना अच्छा है। इसे लेकर तूने मेरा बन्धन काट दिया । इस तरह हर कदम पर इम्तहान होता है। बगैर इम्तहान के कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता । हर कुर्बानी करनी पड़ेगी अगर उसे पाना चाहते हो तो दुनिया की चीजें तो क्या गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी ।

जबतक तन नाही जरत
मन नाही मर जात
तब लगि मूरत श्याम की
सपनेहुँ नाहि लखत ।
. गुरुदेव सबका भला करें।

जब सत्संग में बैठते हैं तो चक्षुओं में अश्रु प्रगट नहीं होते तो ऐसे भाइयों के लिए उचित होगा कि वे प्रेमी लोगों का संग करें । मीरा जी , सूरदास जी के भजन , उनका जीवन चारित्र पढ़ें । गुरु अंगद देव जी ने कोई साधना नहीं की केवल अपने इष्टदे

व गुरु नानक देव जी की सेवा की, उनका आज्ञा पालन किया , अपने को गुरु के समर्पित किया ।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

साधना के साथ साथ महापुरुषों की वाणी-, उनके जीवन चरित्र का भी अध्ययन करना चाहिये , उन पर विचार करना चाहिये। बास् तब में यदि गुरु के साथ सच्चा प्रेम है तो कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। आचार्य दिगन्त महात्मा रामचंद्र जी) पूज्य लाला जी महाराज से गीता पढ़ने के (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) ने पूज्य गुरुदेव (महाराज लिए कहा। गीता लाई गई। एक दो दिन गीता का उप देश दिया , फिर कहने लगे छोड़ो , भीतर की गीता पढ़ो। यह उन लोगों के लिये है जो अपना पूरा जीवन गुरु के लिए न्यौछावर कर देते है। उनके लिए तो यह बात सरल है। परन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है। धारण करना है गुणों को , महापुरुषों की वाणी को पढ़कर उस पर विचार करना है। ईश्वर का गुणगाण करना है। यही तो परमार्थ है। यह कहना कि गुरु करेगा , ऐसा नहीं या तो हम अपने आप को गुरु पर पूर्णतः न्यौछावर कर दें ., नहीं तो बीच का रास्ता अपनायें। भक्ति को भी अपनायें , इन नियमों का पालन करें और ज्ञान भी प्राप्त करें। (परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

हमलोग स्व-निरीक्षण नही करते, हम दूसरों पर निरीक्षण करते है, हम अपने को मान के चलते है कि हम ती बिलकुल परफैक्ट है, हममे कोई कमी नहीं है, कमी अगर है तो उसमे है, यह गलत बात है। हमें अपने आप को सुधारने कि कोशिश करनी है, जिससे कि हमारा जीवन सफल हो।

परम संत डा० शक्ति कुमार सक्सेना

इसी प्रकार कर्म बांधते कर्म की अभिव्यक्ति कर्म की ही आवृत्ति है । और कर्म बांधते वो वही व्यक्ति सफल होगा जो प्रतिक्रिया करने की आदत को छोड़ देगा, जिसके लिए विवेक तथा वैराग की साधना भी सहायक होती है । महात्मा गौतम बुद्ध ने साढ़े छः वर्ष साधना की । उसके अंत में उन्होंने यह निर्णय दिया कि भीतर अथवा बाह्य में प्रतिक्रिया न हो । यह अच्छा है, वह बुरा है, जब तक ऐसे विचार आते रहेंगे सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि प्रत्येक विचार अपने आप भी एक प्रतिक्रिया है । इसीलिए उन्होंने विचारों से रहित होने का, 'शून्य होने का' यह साधन बताया है कि हम प्रतिक्रिया की वृत्ति को छोड़ दें । बात बहुत छोटी सी लगती है परन्तु ऐसा करने में, व्यवहार में, बड़ी कठिनाई होगी । पर निरन्तर अभ्यास करने से यह आदत छूट जाएगी। (परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

जो भाव सन्सारी चित्त में बसा हुआ है जिसकी कार्यवाही के लिए साधक का मन धन-दौलत की फ़िकर में लगा हुआ है, वोह मौजूद रहे और परमार्थ भी बन सके, यह नामुमकिन है। संसारी भय, भाव और चिन्ता मन से निकाल देनी होगी। सँसार उजाड़ देना होगा। बाहर की कार्यवाही बन्द कर देने से या सब छोड़ देने से मतलब नहीं है बल्कि अन्तर में, दिल में, जो भय, भाव और चिन्ता सँसार की भरी हुई है, उसको दूर कर देना होगा। अन्तर में जिस कदर सँसार का भय, भाव और चिन्ता भरी हुई है उसका ज़रा सा ही असर बाहर में आता है, बाकी अन्तर में अम्बार का अम्बार भरा पड़ा है जिसकी इस वक़्त ख़बर भी नहीं है। जिस क़दर उसको दिल से निकाला जायेगा तब ईश्वर का प्रेम पैदा होगा और तब ही मालिक की नूरानी शक्ल (ज्योतिर्मय रूप) के दर्शन होंगे। (समर्थ गुरु महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

ग्रहण शक्ति एवं सहनशीलता

(परम् सन्त श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

गुरु शिष्य के जिन आध्यात्मिक गुण को टटोलता है उसमें सबसे बड़ी चीज है ग्रहण शक्ति, सहनशीलता । शिष्य जब गुरु से किसी की निन्दा करता है तो वह उनकी नजर से उतर जाता है । वह तो स्वयं ही सब कुछ जानते हैं फिर उनसे यह सब अनावश्यक बातें क्यों कहना ? संसार में सुख दुख,शुभ अशुभ दोनों ही हैं और इन दोनों को नियतिनुसार आना ही है फिर उसे ईश्वर की कृपा मान कर उसी में खुश रहने से ही तो ग्रहण शक्ति व सहनशीलता आती है।तभी तो गुरु प्रसन्न होते हैं।

ऐसी सहनशीलता का भाव देखकर गुरु शिष्य को आध्यात्म ज्ञान का अधिकारी समझता है और उसे उस अलौकिक वैभव से मालामाल कर देता है । यदि आप के हृदय में गुरु के लिए श्रद्धा है, उसके चरणों में प्रतिपल आपका ध्यान लगा रहता है तो हजारों मिल दूर रहकर भी उनका सामीप्य आप अनुभव कर सकते हैं।पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि प्रेम में दूरी नहीं है अगर सच्चा प्रेम है तो गुरु शिष्य हर समय,साथ रहते हैं ।

हमें भी चाहिये कि हम परिवार में रहें , दफ़्तर में रहें या अन्य किसी स्थान पर जायें , हमारा व्यवहार प्रेम का हो । प्रेम की ज्योति प्रकाशित रहे । आप सबको अगरबत्ती की तरह बनना है। अगरबत्ती अपनी सुगंधि चारों ओर फैलाती है । इसी तरह आप हम मसबको अपने प्रेको चारों ओर फैलाना है । हमारा अन्तिम लक्ष्य प्रेम है , आत्मिक प्रेम । प्रेम ही परमात्मा है । " love is God and God is love. "

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

सतगुरु सच गुरु का ध्यान (

(आदिगुरु ब्रह्मलीन महात्मा रामचन्द्र जी (महाराज (लालाजी)

पूज्य लालाजी साहब ने अपने एक पत्र में एक शिष्य को गुरु के ध्यान का मर्म (दादागुरु) : इस तरह समझाया है

मुर्शिद या गुरु की मिसाली शक्ल, उसकी हरकात, इख़लाक़ और आदत साहनी-रहनी), चरित्र व स्वभाव में नज़र रखना की तरफ़ दिल (, याद क़ायम रखना, उसका ध्यान बांधना वग़ैरा, सूफ़ियों और संतमत के अभ्यासियों और साधकों के यहाँ का शग़ल है। इसको शग़ल राब्ता भी इसका (बीच का गुरु) भी कहते हैं और बरज़ख़ पीर (गुरु का ध्यान) पार) इस्तलाहीिभाषिकनाम है (।

चित्त को एकाग्र करने के लिए यह अमल ऐसा पुरतासीर प्रभावशाली), शक्ति से भरा हुआहै कि जादू की तरह अपना करिश्मा दिखाता है (, बल्कि और रास्तों से यह क़रीब और काम को सहज कर देता है। शर्त यह है कि जिस मुर्शिद का ख़्याल बाँधा जावे वह मुक़्क़मिल हो और संतमत में गुरु की हैसियत रखता हो, जिसका बातिन का तज़किया आंतरिक) इन्द्रियों और इच्छाओं से शुद्ध हो चुका हो और माया की हद के पार पहुँच चुका हो (हृदय, वरना फिर साधक मायासिफ़त हो जायेगा-जाल का बन्धुआ हो जायेगा और शैतान- । इसलिए निहायत एहतियात लाज़िमी है कि हर शख़्स का ध्यान न (आवश्यक सावधानी) कर दी है (मनाही) बाज़ लोगों ने इसलिए इसकी क़तई मुमानियत .जाये बाँधा।

जो भलाई के बदले बुराई देते हैं वे पशुवृत्ति के हैं। जो बुराई का जबाब बुराई से और भलाई का भलाई से देते हैं वे आदमी हैं और जो बुराई का उत्तर भलाई से देते हैं वे देवता हैं। जो इन सब से परे हैं और भलाई उनकी ज़िन्दगी का अंग बन गयी है। जो स्वप्न में भी किसी की बुराई नहीं देख सकते वे साधु हैं।

--------ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ करतार सिंह जी महाराज

नासाग्र ध्यान

(समर्थ गुरु परमसन्त रामचंद्र जी (लाला जी) महाराज के पत्र - अमृत रस से)

सबाल

मेरे एक भाई ने मुझ से ख़त के ज़रिये यह दरियाफ़्त किया है कि जनाब हज़रत क़िबला ने यानी मेरे गुरु महाराज ने किसी वक़्त तुमको यह हिदायत फ़रमाई थी कि दोनों अबरुओं (भोंहों) के बीच में नाक के आख़िरी हिस्से पर देखा करो.

जबाब

ग़ालिबन यह बहुत अर्से की बात है. मुमकिन है जो अल्फ़ाज़ उन्होंने फ़रमाये थे, वह बजिनसही (जैसे के तैसे) याददाश्त से उतर गए हों या उस वक़्त ही इस तरह समझ में आये हों. बहरहाल सुनने और समझने में ग़लती हुई है या इस ख़त लिखते वक़्त इबारत में ग़लती हो गयी हो. सही तालीम और तरीक़ा इस तरह पर है कि यह दो किस्म के शग़ल हैं. एक को नासाग्र ध्यान (शग़ल नसीरा) कहते हैं और दूसरे को त्रिकुटी ध्यान (शग़ल - महमूदा) कहते हैं . लेकिन मैं कहता हूँ कि यह त्रिकुटी ध्यान नहीं है बल्कि भृकुटि ध्यान है क्योंकि दोनों अबरुओं (भोंहों) के दर्मियान की जगह दरअसल त्रिकुटी की नहीं है बल्कि दो दल कँवल, आज्ञा-चक्र , तीसरे तिल, शिव नेत्र , शिव की तीसरी आँख , नुक़्तए सवदा , प्रतिबन्ध की जगह है. अगर यह दोनों शग़ल आँखे खोली हुई रख कर किया जाय तो इसको त्राटक ध्यान भी कहते हैं.

नासाग्र ध्यान यह है कि नाक की हद यानी नोक पर आधी आँखें खुली हुई रखी जावें और पुतलियाँ आँखों के किसी कोने की तरफ़ न खिसकने पायें, बल्कि आँख के ढेले के बीच में सधी हुई रहें, और नज़र न आसमान की तरफ़ हो और न ज़मीन की तरफ़ हो. आँख से

नाक के सिरे को न देखा जाय बल्कि दूर और ख़्याल से देखा जाय. इसके न जानने से यह

आँखों को आधा खुला हुआ इस तरह रखा जाय जिस तरह कि नशा पिए हुए आदमी की आँखें पूरी तरह नहीं खुलती और यह ख़्याल किया जाय कि नाक की नोंक को देख रहे हैं और इन्तज़ार प्रकाश का है या मालिक का. जितनी देर तक पलक न झपें उतनी देर तक यह साधन करना चाहिए. एक दम से इस से इस क़दर शग़ल न करें कि आँखों से पानी बहने लग जाए या दर्द महसूस हो बल्कि आहिस्ता आहिस्ता रोज़ाना थोड़ा थोड़ा बढ़ायें.

लोग बड़ी ग़लती इस शग़ल में यह करते हैं कि नज़र से नाक के सिरे को देखा करते हैं और ख़्याल से कुछ ताल्लुक़ नहीं रखत .इससे नज़र को नुक़सान पहुँचता है. आँखें भेंगी और टेढ़ी पड़ जाती हैं और दिल के शामिल न होने कि वजह से असली फ़ायदा नहीं पहुँचता .

दूसरा शगल (भृकुटी ध्यान)

यहाँ पर दोनों भोंहों के बीच तीसरे तिल पर ध्यान जमाते हैं और तारे की शकल का ध्यान करते हैं. आँखों को बंद करके भी यह ध्यान किया जाता है और खोलकर भी. आँखें ज़रा ज़्यादा खुली हुई रखते हैं इस तौर पर कि सामने की कोई चीज़ नज़र नहीं आती, और ध्यान यह किया जाता है कि इन आँखों से हम उस तिल या नुक़्तये-सवैदा को देख रहे हैं. लेकिन आँखें बन्द करके अच्छा होता है . यह मुक़ाम जाग्रत अवस्था में जीवात्मा की बैठक का है, या यों कहना चाहिए कि नफ़्सनातका के रहने का मुक़ाम है. नख़्शबन्दी मुजद्दिदी पहले क़ल्ब पर इस क़दर ध्यान पुख़्ता कराते हैं कि उसके अभ्यास से फ़ौरन एक दिन यह लतीफ़ा (चक्र) खुल जाता है.इस लतीफ़े के खुल जाने की निशानी यह है कि ज़ाहिरा तौर पर दोनों अबरुओं (भोंहो) की जगह भारी -भारी हो जाती है या चींटी के रेंगने की सी हरकत मालूम होती है. बाज़ को गुदगुदी और बाज़ को दर्द महसूस होता है .अन्दर की तरफ़ तारा चमकता हुआ नज़र आता है जिसके कि चारों तरफ़ शुआयें (किरणें) बड़ी तेज़ रौशनी

सी निकलती हुई और चारों तरफ़ फैलती हुई नज़र आती हैं. इसके इलावा बहुत सी और निशानियाँ और हालतें हैं . मुख्तलिफ अभ्यासियों को मुख्तलिफ हालतें नज़र आती हैं.

एक अभ्यासी को मैंने देखा था कि उसकी पुतलियाँ आँखों के ढेले से बिलकुल ऊपर को चढ़ जाया करती थीं और इस क़दर ऊपर को हो जाती थीं कि काली पुतली बिलकुल नज़र नहीं आती थी और अभ्यासी की शकल निहायत डरावनी हो जाती थी. उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि उनको इस अभ्यास से कोई फ़ायदा नहीं हुआ. आँखों को खुला रखकर नज़र से यह कोशिश नहीं करना चाहिए कि भौंहों के दरम्यान इस ज़ाहिरी नज़र से देख रहे हैं, ख़्वाह आँख बंद करके या खोल कर . जिन साहिबान को यह अभ्यास बतलाया जावे वही करें . इस तहरीर को देखकर ख़ुद-ब-ख़ुद बिना किसी से दरियाफ़्त किये न करें, वर्ना फ़ायदे के बजाय नुक़सान हो जायेगा. हर शख़्स को पात्र देखकर उसको तालीम दी जाती है . किताब देखकर अभ्यास करना निहायत ख़तरनाक़ है.

पर सामान्यतः ऐसे आनन्द की अनुभूति होती क्यों नहीं ? इसका कारण मन की चंचलता है । बिना मन की चंचलता को त्यागे ईश्वर का सामीप्य नहीं मिल सकता । होता यह है कि वास्तव में हम अपने मन का संग करते हैं, परमात्मा या गुरु का, सत का, संग नहीं करते । गुरु के संग और प्रभु के संग में कोई अन्तर नहीं है । गुरु भी ईश्वर में लय होकर आपकी सेवा में बैठता है । वह कुछ नहीं करता है रोम के द्वारा परमपिता -उसका शरीर अपने रोम - परमात्मा के प्रेम की किरणें चारों ओर फैलाता है ।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज(

जाहि विधि राखे राम ताही विधि रहिये

जब कभी कोई तकलीफ सर पे आवे,मत घबराओ।तुम्हारा परम् पिता परमात्मा खुद तुम्हारा सहायक और सर्वशक्तिमान तुम्हारे साथ है।यह सब तुम्हारे भलाई के लिए ही है। जबतक नश्तर लगाकर फोड़े का मबाद बाहर न कर दिया जायेगा तुम तन्दुरुस्त नहीं हो सकते और तुम को चैन नहीं आ सकता। इसी तरह जबतक तकलीफ पाकर पिछले संस्कार पूरे नहीं हो जाएंगे और तकलीफ उठाकर अपने घाट को नहीं बदलेगा सच्चा सुख प्राप्त नही होगा और आत्मा के ऊपर से माया के पर्दे नहीं हटेंगे। इस तरह जो कुछ भी हो रहा है तुम्हारे भलाई के लिए ही है इसलिए उसकी राजी में खुश रहने की आदत डालो राजी हैं हम उसी में जिसमें रजा है तेरी।

परम् सन्त समर्थ गुरु डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

गुरु शिष्य का अंतरंग प्रेम

(परम् सन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी साहब)

शिष्य के हृदय में यदि गुरु के लिए ब्याकुलता होती है तो गुरु के हृदय में भी सच्चे शिष्य के लिए बहुत प्रेम होता है।माँ सा प्रेम होता है।परमात्मा के बाद मां का प्रेम सबसे ऊंचा होता है। पूज्य लाला जी भी माँ जैसे रूप में फूट पड़े।उस गुरु के रोने में शिष्य कहाँ चुप रह सकता है शिष्य भी रोने लगा। उस स्नेहपुरित रुदन की अश्रुधारा में जितने भी विचार विकार थे सब धूल कर आत्मिक निर्मलता उत्पन्न हो गई। उस दिन के बाद से वो सारे बुरे ख्यालात काफूर हो गये। मौन में ही आत्मा की अनुभूति हो गई । यह कैसा अदभुत दृश्य रहा होगा कि इधर गुरु रो रहा है और सामने शिष्य भी रो रहा है।यह प्रगाढ़ प्रेम की अत्यंत प्रभावशाली स्थिति है। परमात्मा सबको ऐसी स्थिति प्रदान करे...

सारा संसार हममें समाया है और हम सारे संसार में समाये हैं। यह विश्व भावना हो जाती है। परमात्मा के साथ एकता होने पर सबके साथ एकता हो जाती है। को क्या महात्मा बुद्ध कष्ट था? उन्होंने १८ बार जन्म लिया। वह ज्ञानी थे । जिसको आत्मा परमात्मा का ज्ञान होता है, उसे बुद्ध कहते हैं। परन्तु उनके भीतर तो व्याकुलता थी। संसार के दुःखों को देखकर वह दुःखी होते हैं और सोचते हैं कि कोई ऐसी आसान पद्धति मिल जाये जिसको पाकर संसार मेरी तरह बुद्ध बन जाय, ज्ञानी बन जाय , यानी जन्म मरण के बन्धन से छूट जाय , मृत्यु अवस्था का जो कष्ट होता है उससे छूट जाय। शारीरिक रोगों से बच जाय। आत्मिक कठिनाइयों से मुक्त हो जाय। प्रेम की राह बताते हैं। कभी हमने भी सोचा है कि पड़ोसी को आनन्द मिले हमारे, वह सुखी रहे। यह प्रेम की निशानी है। महात्मा बुद्ध के दौलत है -पास धन, सब सुःख हैं। परन्तु दुःखी हैं , चैन नहीं है। उन्होंने कितना कष्ट उठाया, कितना तप किया, तब जाकर उन्होंने इस रास्ते को बताया , उनको एक पद्धति सूझी , पद्धति का मतलब है साधन , सरल साधन।

(परम् सन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

अनुकूल अथवा प्रतिकूल सभी परिस्थितिओं में हमारा चित्त आनन्दमय रहेगा । जब तक चित्त आनन्दमय नहीं रहता तब तक आ त्मा की अनुभूति नहीं हो सकती।

यह सत्यता है कि जब तक भीतर में प्रसन्नता नहीं आती , आनन्द नहीं आयेगा , तब तक आत्मा की समीपता नहीं होगी। आनन्द , सुःख और सच्ची प्रसन्नता कब मिलेगी ? जब हम सन्तोष को अपनाएँगे।

(परम् सन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी

आगे चलकर यह भी छूट जाता है। जाप भी छूट जाता है। है केवल मौन रहता। यदि ईश्वर की कृपा हो जाय तो आत्मा की अनुभूति हो जाती है। इस मौन के लिए प्रयास नहीं किया जाता। जहाँ प्रयास होगा वहाँ मन होगा। जब हम पूर्ण रूप से अप्रयास हो जाते हैं, तब भगवान आते हैं। जब हम दीन होकर, बलहीन होकर, अपने आप को प्रभु के चरणों में समर्पण कर देते हैं, कुछ आशा या इच्छा नहीं रखते, तब ईश्वर की कृपा होती है। हो सकता है कि किसी पर पहले हो जाय और किसी पर बाद में हो। .परन्तु होती है अवश्य उसकी कृपा, उसका फैज़ प्रतिक्षण हम पर बरस रहा है। मौन रहना बहुत कठिन है। ईश्वर रूप की अनुभूति केवल मौन में ही के निराकार हो सकती है।

"जाप मुआ, अजपा मुआ अनहद हूं मर जाय।"

कबीर साहब कहते हैं कि जो जाप है, भगवान का नाम है, जो अजपा है, अप्रयास हो रहा है। भीतर में जो अनहद के शब्द हैं वो भी ईश्वर के प्रेम में लय हो जाते हैं। आत्मा जो हमारे शरीर में है, वह परमात्मा में लय हो जाती है। फिर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है।

(परम् सन्त सदगुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

मौन साधना करने के लिए सरल और सहज आसन में निश्चल शरीर, शान्त मन और स्थिर बुद्धि से बैठने पर हल्केपन की ऐसी स्थिति आ जाएगी जैसे मानो कोई कपड़ा खूँटी पर टंगा हो वह कपड़ा अपने बल पर नहीं खड़ा होता है -। ऐसी स् थिति में, परमात्मा की कृपा की वृष्टि का भान होता है। इस वृष्टि से हमारा शरीर, मन और आत्मा सम .रस हो जाते हैं - ईश्वर तो अनन्त आनन्द स्वरुप है, हमारी दशा भी कुछ देर के लिए आनन्द रूप हो जायेगी।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)

जो ऊँचे अभ्यासी हैं वे जो भी साधना करते हैं उसके साथ साथ मौन की साधना - का अभ्यास भी बढ़ाते जाते हैं। जितना भी मौन साध सके। भीतर का मौन इसका . मतलब यह नहीं है कि हमने तो मौन रखा है, वैसे तो हम नहीं बोलते , क़लम दवात ली और कागज़ पर लिख दिया। मगर भीतर में संकल्प बिकल्प उठ रहे हैं। मौन का मतलब है निर्विचार , कोई संकल्प नहीं। कुछ भी नहीं , कोई बुरा विचार नहीं , कोई अच्छा विचार नहीं।

यह कब होता है , जब साधक अपने आपको ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है। self surrender यानी अपनी कोई इच्छा नहीं रखता , अपनी कोई आशा नहीं रखता। कोई भी घटना घटित होती है , यदि प्रतिकूल है तो भी प्रसन्न है। यदि अनुकूल है तो प्रसन्नता के भाव नहीं रखता। तो मौन का भाव है कि अपनी कोई इच्छा न रहे। यही मौन जाकर आत्मा में लय हो जाता है। जितना समय मिले , जितना आप रह सकते हैं , उतना मौन रहिए। इसका प्रयास करने से आपकी वाणी में शक्ति आयेगी। आप जो बोलेंगे गलत नहीं बोलेंगे। जब ज़रूरत हो बोलो और अन्दर में लय हो जाओ। गुरुदेव के चरणों में मन लगा रहे।

(परम् सन्त सद्गुरु डॉ० करतार सिंह जी महाराज)

आदिकाल से जितने भी धर्म हुए हैं, महापुरुषों ने जितनी भी पूजा पद्धतियाँ अपनाने का आदेश दिया है, प्रायः उन सबका अन्तिम चरण मौन है प्रभु सत्य है .। साधना द्वारा हम -मौन रोम में -उसी सत्यस्वरूप परमात्मा का अंश हमारी आत्मा को अवसर देते हैं कि वह हमारे रोम प्रकाशित हो जाये अर्थात हमारी समीपता और संयोग की अनुभूति उस परमात्मा के साथ हो जाये।

(परमसन्त सद्गुरु डॉ० करतारसिंह जी महाराज)